TIGHT BINDING BOOK



श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज

* ओ३म् *

नवीन और

प्राचीन समाजवाद

(नाथ ऑण्ड कंपनी) [illegible]
हैदराबाद-दक्षिण

लेखक
पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज

प्रथम वार २०००] [मूल्य १ रुपया

बसन्त प्रिंटिंग प्रेस, गनपत रोड
लाहौर ।

प्रकाशक :—
ला० केशोराम अधिष्ठाता
महात्मा हंसराज वैदिक साहित्य विभाग
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब, सिन्ध बलोचिस्तान
लाहौर ।

भूमिका

दुनियाँ जब से बनी है तभी से अमीरी और ग़रीबी दोनों साथ साथ जुड़े मां भाईयों की तरह चली आती हैं। यत्न यह बराबर होता रहा कि उन में मेल रहे और वे वास्तव में भाई भाई की तरह से रह सकें और चिरकाल तक वे इस प्रकार रहे भी, परंतु अब दो हज़ार वर्ष से [1] वे भाई भाई की तरह से नहीं अपितु विरोधियों की तरह से दो कैम्पों में विभक्त हो गये हैं और उनका यह विरोध, ज्वार भाटा की तरह, न्यूनाधिक तो होता रहता है परन्तु जाता नहीं। इस का कारण और एकमात्र कारण दोनों का स्वार्थसंघर्षण है। अमीर तो यह चाहते हैं कि विना हाथ पांव हिलाये ग़रीबों के परिश्रम का लाभ उठाकर अमीर बने रहें और ग़रीब, इस के विपरीत यह चाहते हैं कि विना या नाम-मात्र परिश्रम से, अमीरों का धन हड़प करते रहें। जब तक इन में यह स्वार्थ पनपने नहीं पाया था तब तक ये मेल से रहे, उन में किसी प्रकार का मन मुटाव नहीं होने पाया, उस की चर्चा हम आगे के पृष्ठों में वर्ण और आश्रम का उल्लेख करते हुये करेंगे। इन वर्ण और आश्रमों का संबंध, इस देश के आदिम वासी प्राचीन आर्यों की संस्कृति और सभ्यता से है। उस आश्रममर्यादा का लोप होने से; पश्चिमी देशों में विशेषता के साथ अमीरों और ग़रीबों का संघर्षण शुरू हो गया और अब तक चल रहा है।

---

(1) कैपिटल नामक ग्रन्थ में कार्लमार्क्स ने भी इस अवधि को स्वीकार करते करते हुए प्रकट किया है कि वर्तमान पूंजी और श्रम का झगड़ा इसी काल की उपज है।

पश्चिमी देशों में अधिकता के साथ इस झगड़े के आरंभ होने का कारण, पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता के अंतर में निहित है। पूर्वी सभ्यता का आदर्श त्याग परन्तु पश्चिमी सभ्यता का आदर्श भोग है।समाज का आदर्श देखकर असंख्यों आदमी मिलकर शान्ति-मय जीवन व्यतीत कर सकते हैं परन्तु भोग अथवा स्वार्थ को लक्ष्य बनाकर दो आदमी भी मिलकर नहीं रह सकते। यही कारण है कि योरुप में अशान्ति का वातावरण सदैव प्रवाहित रहता है। एक लड़ाई खतम नहीं होने पाती कि दूसरी का सूत्र पात हो जाता है। पिछले २०० वर्षों में योरुप में इस लड़ाई झगड़े के कारण कितने प्राणी नष्ट हुये इस का कुछ अनुमान नीचे दी हुई तालिका से हो सकेगा:—

सं०	युद्ध का नाम	मरे या घायल हुए	लड़ाई से उत्पन्न रोग से मरे	विशेष
(१)	सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६—६३)	१२५४०० (आस्टरियन) १८०००० (पुरुशियन्स)	४००००	
(२)	नेपोलियन युद्ध (१७६३—१८१५)	४५८५४३	२६५६५३	रूस के सिवा अन्य युद्धों में
(३)	,, १८१२ ई०	५६५०००	२५०००	रूस के युद्ध में।
(४)	रूस और तुर्की युद्ध (१८२८)	१७५२६		रूस की बाक़ी समस्त सेना रोग से मर गई
(५)	क्रीमिया युद्ध	अंगरेज ४६०२	१७५८०	
		फ्रेंच २०२४०	१५३७५	
		आस्टरिया ४२५२	३५०००	

(६) एमरीकन सिविलवार (१८६१—६५)	उत्तरीय रियासतें ११००००	२२८५८६
	दक्षिणी राज्य १२००००	
(७) रूस टरकी युद्ध	प्रशियन	६०००
(१८७७)	रूस ३००००	८००००
	टरकी ३५०००	७२०००
(८) बूअरों और अंगरेज़ों	अंगरेज़ ७५३४	१५३८२
का युद्ध	बूअर ५२००	१०४५६
(९) यूरुप का महा युद्ध	रूस १७०००००	१३०००००
(१९१४—१९१८)	जरमनी २००००००	
	फ्रांस १४००००००	
	बृटिश ९५००००	
	आस्टरिया १५०००००	
	इटली ५०००००	
	टरकी ३५००००	
	अमरीका १०००००	

इस महायुद्ध के बाद १९२८ ई० में ८० लाख मनुष्य इन्फलुएन्ज़ा से मरे थे। पश्चिम क्यों इतनी अशान्ति का कारण बना हुआ है इस का कारण एक तो वही विश्वभावनारहित और स्वार्थपूर्ण सभ्यता है जिस का ऊपर उल्लेख हुआ है। दूसरा कारण इसी सभ्यता की सन्ततिरूप का नैशनलइज्म है। हम भी नैशनलइज्म को मानते हैं परन्तु हमारे और पश्चिमी नैशनलइज्म में भीतरी अन्तर है। पश्चिमी जातियों का नैशनलइज्म उनका उद्देश्य है, यदि वे नैशनलिस्ट बन गये तो मानो उन्हों ने अपने अंतिम ध्येय को प्राप्त कर लिया परन्तु हमारा नैशनलइज्म विश्वभावनामय जीवन बनाने का साधनमात्र है। नैशनलइज्म ने पश्चिम

में जन्म की अनेक जातियां पैदा करदी हैं। अंगरेज़, फ्रेंच, रूस, जरमन आदि सभी जन्म की जातियां हैं और एक दूसरे से ईर्ष्या द्वेष रखती हैं और प्रत्येक अपने आप स्वार्थसिद्धि के यत्न में समस्त हैं। वर्तमान १६३६ ई० से शुरू हुआ युद्ध भी इसी संकुचित देश सीमित जातीयवाद (Nationalism) का परिणाम है।

पश्चिमी देशों में इस ध्येय को बदलते हुए अनेक यत्न गरीबों और अमीरों में शान्ति स्थापना के लिये हुये और हो रहे हैं परन्तु वे पूर्णतया सफलीभूत क्यों नहीं हुये या होते इस का एक मात्र कारण यही है कि वे देश अपनी विश्वभावना शून्य सभ्यता को नहीं बदलना चाहते।

(२) इन्हीं संघर्षणों में, वर्तमान साम्यवाद का जन्म हुआ। लिओं फ्रांस में लांज (Lange) ने फूरियेवाद को जन्म दिया और बावुफ (Babuf) और उसी के सहयोग में काम करने वालों ने मिल कर सत्तावादी साम्यवाद को प्रचलित किया। इस बीच में फ्रांस की क्रान्ति हुई और राज्य का उथल पुथल हुआ। इस क्रान्ति के बाद फरियर (Faurier), सेण्ट सायमन और राबर्ट ओवेन और गाडविन ऐसे व्यक्ति हुए जिन्हों ने यौरुप में आधुनिक समाजवाद के सिद्धांतों के फैलाने का साहसपूर्वक यत्न किया और इन्हीं के अनुयायियों ने साम्यवाद का निश्चित रूप दिया। इंगलैंड में इन्हीं रूपों के अनुसार ग्राम बसाने का यत्न किया गया परन्तु सफलता नहीं हुई। इन्हीं संघर्षणों ने इंगलैंड के मान मज़दूर दल को जन्म दिया।

फ्रांस में फूरियर के अनुयायी कांसी देरा (Consider-

ant) ने, पूंजीवाद के विरुद्ध विज्ञप्ति प्रकाशित की, जिसे वर्तमान समाजवाद के सिद्धांतों का पूर्व रूप कहना चाहिये। जोज़ेफ प्राउडहुन (J. Proudhon) ने जो कल्पनाये अराजकवाद और अन्योन्याश्रय वाद के सम्बन्ध में की थी उनका व्याख्यान किया।

लुईब्लांक ने मज़दूर संगठन की योजना प्रकाशित की। वीदाल और मेकर ने अपने कल्पित समष्टिवाद का विवरण प्रकाशित किया और यत्न किया कि उसके अनुसार विधान स्वीकार हो जावे परन्तु उसमें सफलता नहीं प्राप्त हुई।

फ्रांस में १८४८ ई० की क्रांति के बाद प्रजातन्त्रशासन की बुनियाद पड़ी परन्तु इस शासन की घोषणा के बाद ही मज़दूरों ने संगठित विद्रोह किया परन्तु वह विद्रोह भी असफल हुआ। इस विद्रोह को कुचल देने के लिये शासनाधिकारियों ने बड़ी निर्दयता से सहस्रों मज़दूरों का वध कराया और बहुत से देश से निकाल भी दिये गये। इसी बीच में नैपोलियन का एक संबन्धी छोटा नैपोलियन फ्रांस का राजा बन बैठा और उसके निष्ठुर राज्य काल में फ्रांस से समाजवाद और वर्गवाद का नाम निशान तक मिटा दिया गया। दूसरी ओर इंगलैंड में जब पैरिस के मज़दूरों और ओवेन के अनुयायियों तथा इंगलैंड के ट्रेडयूनियन वालों का एक महान सम्मेलन हुआ तो उसमें पर्याप्त वादानुवाद के बाद प्रायः सभी को, एक मत होकर स्वीकार करना पड़ा कि मज़दूरों को अपना उद्धार आप करना होगा। पूंजीपतियों की सहायता की आशा नहीं करनी चाहिये, और इस प्रकार इन सभी श्रेणियों के श्रमजीवियों ने मिलकर एक महान् अन्तर्जातीय संघ बन लिया परन्तु १८७०–७१ के जर्मन

फ्रांस युद्ध के कारण फ्रांस में समाजवाद की उन्नति फिर रुक गई परन्तु जर्मन देश में कार्लमार्क्स और ऐंजिल के द्वारा उपर्युक्त इंगलैंड और फ्रांस के साम्यवाद के सिद्धांतो के प्रचार से फ्रांस के साम्यवादियों के सिद्धांत दब नहीं सके और उनका एक न एक रूप से कभी इधर कभी उधर प्रचार होता ही रहा। कार्लमार्क्स के द्वारा न केवल इन सिद्धांतों का प्रचार हुआ अपितु उसने इन सिद्धांतों के साथ अपने कुछ और मतों को शामिल करके समाजवाद को वैज्ञानिक रूप दिया और यही वैज्ञानिक समाजवाद इस ग्रन्थ का आलोच्य विषय है। कार्लमार्क्स के सिद्धांतों में जो परिवर्तन लीनन ने और लीनन के मतों में जो परिवर्तन स्टैलिन ने किये उनका भी दिग्दर्शन, पाठक, इस ग्रन्थ में कर सकेंगे। इनका वर्णन करने से पहले ग्रन्थ में कुछ उन आंदोलनों का भी जिक्र कर दिया गया है जो इंगलैंड और फ्रांस में हुये थे और जिन्हें मार्क्सवाद का पूर्व रूप समझा जाता है जिससे यह बात भलीभांति समझी जा सके कि मार्क्सवाद का जन्म किस प्रकार हुआ था।

(२) ग्रन्थ के तय्यार करने में, आवश्यक था कि अन्य ग्रन्थों की सहायता ली जाती तदनुसार सहायता ली गई है। जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है उनकी एक सूची, इससे पहले पृष्ठों में लगा दी गई है। मैं इन ग्रंथ कर्ताओं का आभारी हूं। उनके लिखे ग्रंथों की सहायता के बिना इस ग्रन्थ का तय्यार होना संभवभ नहीं था। इन थोड़े से शब्दों के साथ इस ग्रन्थ को स्वाध्याय शील जनता के सम्मुख उपस्थित किया जाता है।

रामगढ़ }
३१-५-१९४५ } नारायणस्वामी

इस ग्रन्थ के तय्यार करने में निम्न पुस्तकों से सहायता ली गई है:—

(1) ऋग्वेद, यजु और अथर्ववेद
(2) मनुस्मृति
(3) नारदस्मृति
(4) बृहदारण्यकोपनिषद्
(5) Men and Politics by Louis Fischer.
(6) Stalins Russia and the Crisis in Socialism by Max Eastman.
(7) Assignment in Utopia by Engene Lyons.
(8) The dream we lost by Freda Utby
(9) Return from the U. S. S. R. and after thoughts on the U. S. S. R.
(10) Capitalism by Carl Marx Vol. I and II.
(11) The History of Socialism by Sally Graves.
(12) Socialism reconsidered by M. R. Masani.
(13) Darkness at noon by Arthur Korstler.
(14) Mission to Mascow by Josoph L. Davies.
(15) The Managerial Revolution by James Brunham.
(16) Twelve Studies in Russia.

(17) Humanity uprooted by M. Hindus.
(18) Study of a brave new world by A. Huxley.
(19) Dream book by Ar. Philip Ravan.
(20) The shape of things to come by H. G. Wells.
(20) History of the future by J. L. Deveis.
(21) Modern business by N. V. Hope.
(22) What is Socialism by Dan Griffiths.
(23) Survey of Modern Socialism by F. G. C. Hearn Shaw.
(24) Lenin by V. Maren.
(25) The way to prevent war by Sir Normat Angal and Prof. H Laski.
(26) Hindu Society by K. P. Jayaswal.
(27) Fascism by Major Burnes.
(28) Unto last by John Ruskin.
(29) The psychology of charactor by D. A. A. Roback.
(30) A Scientist among the Soviets by J. Huxley.
(31) Guide through world chaos by G. D. H. Cob.
(32) The Guild States by G.R.S. Tanylor.
(33) Labour defended against the claims of Capital by Thomas Hodgskin.

(34) A Pamphlet on the nature of property by P. J. Proudhon.

(35) Critique of political Economy by Carl Marx.

(36) The condition of working classes in England by Angal.

(37) Roman Empire by Gibbon.

(38) Political Science by Leacdok.

(39) Political Science by Gellal.

(40) Road to freedom by Bertrand Russal.

(41) Ancient V. mdern Scientific Socialism by Dr. Bhagwan Das.

(42) The Essential unity of all religions by Dr. Bhagwan Das.

(43) World Panorama by George Saldes.

(44) Local Government in ancient India by Radha Kumud Mukerjee.

(45) Industrial arts of India by Sir George Birdwood.

(46) The literary History of India by Frazer.

(47) Europe to-day by Cob.

————

विषय-सूची

चौथा अध्याय

कार्लमार्क्स

पांचवां अध्याय

मार्क्सवाद पर विचार

दसवां अध्याय

ग्यारहवां अध्याय

बारहवां अध्याय

तेरहवां अध्याय

चौदहवां अध्याय

पन्द्रहवां अध्याय

सोलहवां अध्याय

नवीन और प्राचीन

समाजवाद

पहला अध्याय

यौरुप का इतिहास प्रकट करता है कि एक रोमन जाति प्रायः समस्त यौरुप और एशिया के पश्चिमी भाग की मालिक थी, उसका कारण यह था कि वे जहां शासन करते थे वहां शासनान्तर्गत जातियों को, शिक्षित सभ्य और मनुष्योचित व्यवहार कर सकने की योग्यता वाला बनाने का यत्न किया करते थे। उन्होंने अपने शासन काल ही में इंगलैंड निवासियों को सभ्य और इस योग बनाया कि वे स्वयं अपने देश का शासन कर सकें। इंगलैंड निवासियों ने अपने को रोमन जाति का अच्छा शिष्य सिद्ध नहीं किया अन्यथा २०० वर्ष के शासन काल में भारतवर्ष में शिक्षा का औसत ६ फ़ीसदी न होता और न देश में दरिद्रता का साम्राज्य छाया हुआ रहता। रोमन्स का इतना विशाल साम्राज्य क्यों नष्ट हो गया और क्यों आज उनका कोई नाम लेवा भी बाक़ी नहीं रहा? इसका कारण यह है कि उसके अन्तिम शासक, शासकों के गुणों से रहित हो गये। उन दिनों में रोमन जाति दो भागों में विभक्त हो गई थी एक धनी और कुलीन (Patrician) और दूसरे साधारण पुरुष (Plebeian) कहे जाते थे। अमीरों की अमीरी

रोमन जाति

बढ़ी और साधारण पुरुष दरिद्रता के शिकार हुये। इस परिणाम का फल यह हुआ कि धनी तो स्वामी और साधारण व्यक्ति दास बन गये। धनियों ने धन के नशे से चूर होकर दासों पर अत्याचार करने प्रारम्भ किये। उन अत्याचारों में से कुछ एक का विवरण दिया जाता है :—

(१) ये दास सरकस के ढंग पर शेरों से लड़ाये जाते थे और जब शेर उन्हें मार लेता था तो इस से उन धनियों का बड़ा मनोरंजन होता था।

(२) ऐसे आईन वहां (रोम में) बना दिये गये थे जिस से धनी लोग जब शिकार से लौटें तो कुछ एक दासों को मार कर उनके रक्त से अपने पांव धो सकें। इसी प्रथा का संकेत करते हुये, कारलाइल ने एक बार व्यगं से कहा था कि अब वे क़ानून प्रचलित नहीं रहे जिनके रू से कोई ज़िमीदार शिकार से आकर दो दासों का बध करके उनके ख़ून से पांव धोया करता था।

(३) "शारलुअर" छत पर काम करते हुये राज को गोली मार कर, उसके गिरने में अपना मनोरंजन समझा करता था।

(४) "नीरो" ने केवल तमाशा देखने के लिये रोम नगर के उस भाग में जिसमें ग़रीब रहा करते थे, आग लगवा दी थी।

(५) "कैली गुला" ने अपने घोड़े को अपना मन्त्री (Consul) बनाया था। इत्यादि २ मूर्खताओं और अत्याचारों के फल स्वरूप रोमन साम्राज्य तो नष्ट हुआ ही परन्तु उसका एक भयानक परिणाम यह निकला कि धनी और निर्धनों में शत्रुता बढ़ने लगी और निर्धनों ने, अमीरों के इन अत्याचारों से बचने के लिये अपनी आबादी पृथक करनी शुरू की।

भ्रातृसंघ

ईसा के जन्म से कुछ पहले एलेकज़ैन्डिरिया, जेरोशलीम आदि स्थानों में मज़दूर लोगों ने अपने संघ बनाने शुरू किये। इन संघों में राज, मज़दूर, बढ़ई, लुहार आदि श्रमजीवी स्त्री पुरुष सभी मिल कर रहा करते थे—सब का भोजन एक जगह बनता था, सब जो कमा के लाते थे वह एक सम्मिलित कोष में जमा हो जाता था, वस्त्र सब एक तरह के पहनते थे। काम अपना अपना पृथक २ यथा स्थान करने चले जाया करते थे। इन संघों में जो नवीन व्यक्ति प्रविष्ट होते थे वे नव शिष्य (Novice) कहलाते थे और जो इस संघ का मुखिया होता था उसे 'इसीर' (Esseer) कहा जाता था। ईसा के लिये कहा जाता है कि वह जेरोशलीम के इसी प्रकार के एक संघ का एक सदस्य था। सूली लगने से उस की मृत्यु नहीं हुई थी। सूली के बाद जोज़फ़, जो रोमन गवर्नर की कौन्सिल का एक सदस्य था, उस समय की प्रथानुसार सूली के बाद ईसा की लाश को, उसे मरा प्रकट करके गवर्नर से मांग लाया था। 'निकोडैमिस' की चिकित्सा से वह अच्छा हो गया और अपने संघ ही में रहा। इसके ६ मास के बाद उसकी असली मृत्यु हुई और वह एक जगह समुद्र के किनारे दफ़न किया गया।[1]

इस संघ वाले प्राय: अहिंसा नियमों पर चलते थे, इसलिये उस समय के धनी पुरुषों पर इन संघों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा

1—ईसा की सूली आदि का सविस्तर हाल जानने के लिये Crucifixion by an eye witness नामक ग्रन्थ को देखना चाहिये जिसे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ने प्रकाशित किया है।

और उनके अत्याचार निर्धनों पर यथा पूर्व जारी रहे। तब निर्धनों ने कार्य प्रति कार्य के नियमानुसार हिंसा का आश्रय लिया। यौरुप में अनारकी फैलने का यहीं से प्रारम्भ होता है। इस अराजकता (Anarchy) से वहां कितना रक्तपात हुआ इस का साक्षी वहां के मध्यकालीन युग का इतिहास है।

फ्रान्स देश

फ्रान्स में हुई क्रान्ति के पहले, वहां के एक व्यक्ति "रूसो" ने एक प्रकार के समाजवाद का प्रचार किया था जिसे हम वर्तमान समाजवाद का आदि रूप कह सकते हैं। उसने अपने एक ग्रन्थ द्वारा अपने समाजवाद के सिद्धांत इस प्रकार प्रकट किये थे :—

(१) पृथिवी और संपत्ति पर सब का बराबर अधिकार होना चाहिये।

(२) बलवानों ने निर्बलों का धन छीन कर उसको स्थायी बनाने का जो यत्न किया है उसी को क़ानून कहते हैं।

(३) जिसने भूमि के किसी अंश को अपनी निजी संपत्ति होने की घोषणा की वह ठग था।

फ्रांस की क्रान्ति का कारण रूसो का यही ग्रन्थ (Le Contral Social) समझा जाता है जिसमें सोलहवां लुई वहां की गद्दी से उतारा गया और प्राण दंडित हुआ। "वालटेयर" प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक ने रूसो के इस ग्रन्थ को बदमाशों का दर्शन कहा था। अस्तु—इस प्रकार फ्रांस देश में समाज वाद का सूत्र पात हुआ। इसके बाद समाजवाद में उतार चढ़ाव होते रहे। कभी २ श्रृङ्खला टूट भी गई। आगे के अध्यायों में, क्रम पूर्वक, समाजवाद का जहां से प्रारंभ होता है संक्षेपतः उल्लेख किया जायगा।

दूसरा अध्याय

इंगलैंड

फ्रांस की क्रांति हो चुकने पर इंगलेंड में असन्तोष शुरू हुआ-

(१) प्रारम्भ

असन्तोष का मुख्य कारण यह हुआ कि घरेलू व्यवसायों के स्थान में यान्त्रिक व्यवसाय शुरू हुआ जिससे श्रम जीवियों में बेकारी की भारी मात्रा में बढ़ गई, यद्यपि इन नवीन कारखानों में कुछ एक मज़दूरों की खपत हुई परन्तु उससे उस बेकारी में कमी नहीं हुई। तब मिल मालिकों ने सोचा कि मजदूरों की कुछ सहायता की जावे परन्तु वह सहायता नहीं थी अपितु उनके स्वार्थपूर्ति का एक साधन था। उनकी स्कीम यह थी कि कारखाना खोलने में जो इमारत खड़ी करनी पड़ती है तथा मशीनों में जो खरचा होता है उस की पूर्ति कारखाने की पैदावार बढ़ा कर की जावे और उस के बढ़ाने के लिये मजदूरों के काम के घण्टे बढ़ाये जावें और मज़दूरों की नाम मात्र को कुछ मज़दूरी भी बढ़ा दी जावे परन्तु इस से कुछ बात बनी नहीं और असन्तोष बढ़ता ही रहा।

इन मशीनों के कारण जो ख़राबियां उत्पन्न हुईं उस ने

(२) इन कारख़ानों का अंधेरा पहलू

असंतोष को और बढ़ाया। उन का अंधेरा पहलू यह था (१) बाल श्रम जारी होगया (२) काम सिखाने (Apprentice system) का एक विभाग खोला गया,

(३) आरोग्यविघातक (Insanitary condition) अवस्था बढ़ी, (४) नई मशीनों के खड़ी करने में मृत्यु का ख़तरा भी बढ़ा।

इंगलेंड के धनी फ्रान्स की क्रान्ति का विवरण सुनकर भयभीत रहते थे, इस से वास्तविक सुधार करने का भी उन्हें कभी स्वप्न आता रहता था परन्तु उन का डर, मिट के निग्रह कारी आईनों (Repressive laws) की सफलता से कम हो गया। परन्तु मज़दूरों की हड़ताल होती रही। निग्रह कारी आईनये थे:-

(३) निग्रह-कारी कार्य

(१)मजिस्ट्रेटों को संक्षेपत:निर्णय (Summary powers) करने के अधिकार दिये गये। (२) ड्रिल करना निषिद्ध ठहराया गया (३) नास्तिकता (Blasphemy) और विद्रोह करने के आईन कड़े किये गये, (४) तलाशी लेने और संपत्ति ज़ब्त करने के अधिकार मजिस्ट्रेटों को दिये गये। (५) साधारण सभाओं के संगठित करने के अधिकार कम किये गये। (६) समय समय पर निकाले जाने वाले पैम्फिलटों पर, समाचार पत्रों जैसे भारी टैक्स लगाये गये।

"पुलिस सरकार" के आईनों से असन्तोष दूर नहीं हुआ अपितु इन के जारी होने पर जनता ने मंत्री मंडल के सदस्यों के बध करने का षडयंत्र रचा। एक मीटिंग में जिस में प्रभाव शाली वक्ता हंट (Hunt) भाषण देने वाला था मजदूर दल के ८० हज़ार व्यक्ति सम्मिलित हुये। मशीन के काम करने वाले (Luddites) भी कारखानों को छोड़कर राजनैतिक सुधारों के आन्दोलन करने में लग गये। हंट ने यद्यपि बंदी बनाने के लिये अपने को पेश किया था परन्तु पुलिस ने उसे न पकड़ कर

जनता को अपराधी ठहराया। फायर करने से ११ व्यक्ति मरे और बहुत से घायल हुवे। पुलिस का यह कार्य "पेटरलू बध" (Peterloo massacre) के नाम से प्रसिद्ध है। इस घटना से और भी लोग राज्य के विरुद्ध होकर सुधार इच्छुकों के केम्प में चले गये ओवन (owen) ने मशीनों पर विचार करते हुये प्रकट किया कि मशीनों से जो अधिकता के साथ माल पैदा होता है इस में दोष नहीं, दोष केवल उनके विभाजन में है। उस ने निजी संपति विवाहप्रथा, सामयिक संप्रदायों के संबंध में अनेक सुधार कराने चाहे परन्तु असफल होते हुये उस ने जान लिया कि पूंजीपति नहीं चाहते कि देश के आर्थिक ढांचे में किसी प्रकार का परिवर्तन हो। जनता चाहती थी कि राजनैतिक सुधारों के साथ, समानान्तर रेखा की तरह, आर्थिक सुधार भी हों परन्तु पूंजीपति इस के विरुद्ध थे। जनता का दृष्टिकोण कुछ उसी प्रकार का था जैसा मार्क्स ने पीछे से प्रकट किया।

(४) अतिरिक्त भाग मूल्यवाद

कार्लमार्क्स का अतिरिक्तभागमूल्यवाद (Theory of Surplus value) ग़रीबों के लूटने का नाम है- मार्क्स चाहता था कि जिन साधनों से धनी मज़दूरों के परिश्रम से उत्पन्न माल को जितना मज़दूरी देने के बाद बचरहता है, हड़प करलेते हैं उन को दूर कर दिया जावे। उन के दूर करने ही के साधनों का नाम अतिरिक्तभागमूल्यवाद है। इंगलैंड के आन्दोलनों में एक आन्दोलक व्यक्ति थामस हाजकिन (Thomus Hodgskin) था। यह एक जहाज़ी विश्रान्त कर्मचारी था। इसने जो सुधार चाहे

थे, वे मार्क्स के इस वाद के पूर्व रूप ही थे। [1]

इसी प्रकार समाजवाद वाचक अंगरेज़ी शब्द Socialism सब से पहले ओवन के अनुयायियों के एक पत्र में प्रयुक्त हुआ था। यह पत्र समाजोद्धार के लिये आन्दोलन करता था, पार्लियामैन्ट का सुधार भी इस के काम का एक अंग था। इस के बाद इस शब्द को फ्रेंच लेखक रिबैंड (Reybund) ने अपने लेखों में अधिकता के साथ प्रयोग किया था। [2]

(५) समाजवाद

श्रमजीवियों के विभिन्न संघों ने मिल कर स्वतंत्रता के साथ अपने संगठन को दृढ़ किया और लंडन के मिल मज़दूरों के संघ के साथ होकर उन्होंने एक आंदोलन, सार्वलोकिक सम्मति के अधिकारों की प्राप्ति का किया। इसी प्रकार के संघ, इसी उद्देश्य के साथ जगह जगह बनगये। १८३७ ई० में एक बृहदधिवेशन में, जिस में प्रसिद्ध सुधारक "फरगस, ओ, कैनौर" (Furgus, O, Cannor) भी मौजूद था, यह निश्चय हो गया कि पार्लियामैन्ट को एक प्रार्थना पत्र निम्न सुधारों के लिये दिया जावे:—

(६) सुधार-संघर्ष

[१] सार्वलौकिक सम्मत्यधिकार प्राप्ति।
[२] वार्षिक पार्लियामैन्ट।

1—हाजकिन ने अपने सुधारों का सविस्तार वर्णन अपने ग्रंथ "Labour. defended against the claim of capital" में दिया है।

2—A history of socialism by groves P 25.

[३] गुप्त सम्मति पत्र (Secret Ballot)

[४] बराबर बराबर निर्वाचकों के जिलों का निर्माण।

[५] पार्लियामैन्ट के उम्मीदवारों के लिये जायदाद रखने के शर्त का दूरीकरण तथा मेम्बरी का टैक्स।

यह प्रार्थना पत्र रैडिकल प्रेस से प्रकाशित हुआ और इस का नाम "सर्व साधारण का अधिकार पत्र" (Peoples Charter) रखा गया। यह प्रार्थना पत्र पार्लिमैन्ट में उपस्थित हुआ औवन के अनुयायी भी इस की पुष्टि में लग गये। लार्ड रसल ने, गवर्नमैन्ट की ओर से जब इस प्रार्थना पत्र को अस्वीकार करते हुये, यह उत्तर दिया कि निर्वाचकों के संबंध में जितना सुधार होगया है, वह सदा के लिये है अब उस से अधिक आशा नहीं करनी चाहिये, यह चार्टर आन्दोलन इस उत्तर के बाद क्रान्ति की ओर चला गया। और इस प्रार्थना पत्र के स्वीकारी के इच्छुकों ने घोषणा की कि "यदि सरकार हमें पिटरलू का मार्ग दिखायेगी तो हम उन्हें मासकू बनाके छोड़ेंगे" [1]। ये शब्द थे जो प्रत्येक मज़दूर की ज़ुबान से निकलने लगे। अस्तु जब इस यत्न से मज़दूरों को असफलता हुई तब उन्होंने अच्छे दृढ़ व्यापारिक संघ (Trade Unions) बनाने शुरू किये और सहकारिता के नियम से चलने वाले कारखानों के बनाने की ओर ध्यान देना शुरू किया।

इस चार्टर के उद्योग और पार्लियामेंट के सुधार के आंदोलन

---

(1) अंगरेजी के शब्द ये हैं:—If they (govt) Peterloo us, we will mascow them (A history of socialism by sally groves P 26)

(७) कार्लमार्क्स की शिक्षा

में, जिसे हंट और कोविट ने ओवन के समाजवाद के दृष्टिकोण से जारी कर रक्खा था। समस्त समाजवाद के सुधारों का पूर्वरूप निहित था। कार्लमार्क्स और उसके साथी ऐंगिल्स (Engels) ने इन सब पर विचार करते हुए अनुभव किया कि उनके इच्छित सुधारों के लिए यह यत्न अत्यन्त सहायक होगा। और इसी लिए उन्हों ने बड़ी सावधानी के साथ इन समस्त प्रयत्नों का अध्ययन किया।[1]

---

[1] (1) A history of socialism by Sally Groves p 32 + 33.

तीसरा अध्याय

फ्रांस (१७८६—१८७१)

फ्रांस की क्रांति जिस का पहले उल्लेख हो चुका है। यद्यपि समाजवाद के नियमानुसार नहीं थी परन्तु निश्चित रीति से यह कहा जा सकता है कि इस से इस वाद को पुष्टि मिली। फ्रांस की क्रांति का आधार संपत्ति रक्षा था परन्तु अन्त में वह सम्पत्ति से सम्बंधित मौलिक सिद्धान्त (Fundamental tenet) के रूप में परिवर्तित हो गई। उस समय स्थिति ऐसी पैदा हो गई थी कि संपत्ति शीघ्र से शीघ्र एक से दूसरे के हाथ में जाने लग गयी। तब यह पूछना स्वाभाविक था कि सम्पति का न्यायानुसार मूल्य (moral Value) क्या है? इंगलैंड की क्रांति असमय थी परन्तु फ्रांस की क्रांति ठीक समयानुकूल थी। वहां मार्च १७६१ में राजविधानानुसार सर्व साधारण के संघ (Guild) बंद कर दिए गए थे। जून १७६१ में पैरिस में कोई भी संघ बनना निषिद्ध ठहराया गया था। नैपोलियन के बनाए हुए विधान भी कुछ इसी प्रकार के थे। १८०३ ईस्वी में नियम बनाया गया कि प्रत्येक मज़दूर एक पास (Livert) रक्खा करे और जब भी पुलिस चाहे उसे दिखा दिया करे। १८६० ईस्वी में यह पास प्रथा बन्द हो गई। इस बीच में राजाज्ञा का भंग करके अनेक संघ बनाए गए। उन में से एक 'जरनीमैन' (Journey

(१) प्रारम्भ

men) का संघ भी था। इस संघ में पुराने ढंग से हलफ लेकर लोग दाख़िल हुआ करते थे। दूसरा संघ म्यूच्युलाइट्स (Mutulites) नाम का था। यह संघ व्यापार से सम्बन्धित था। यद्यपि फ्रांस की सरकार ने इस संघ को अवैधानिक घोषित कर रक्खा था फिर भी १८२३ ई० में इस में ११००० सदस्य प्रविष्ट थे। ये और इसी प्रकार के अन्य संघ प्राय: सभी रणोद्यत संघ थे और इनके सभी कार्य गुप्त रक्खे जाते थे। परन्तु इन सब का उद्देश्य एक ही अर्थात मज़दूरों की अवस्था को उन्नत करना था।

(२) विलरमी की रिपोर्ट से प्रकट है कि उस समय मजदूरों को १५ घण्टे काम करना पड़ता था। मज़दूरों की आबादी में ६१ पर शतक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी आय आवश्यकता से कम थी। इन सब घटनाओं से अशांति बढ़ रही थी।

(३) कौण्ट हेनरी दी सेन्ट साइमन (Count Henri de saint cimons १८६०—१८२५) यह शान्त और मौलिक विचारक था। इसके विचार भी समाजवाद को पुष्ट करने वाले थे। १८३० ईस्वी की क्रांति से इसकी प्रसिद्धि बढ़ गई। साइमन की विचार धारा इस प्रकार थी:—

(क) एक आदमी जो दूसरे को लूटता है यह लूट बन्द होनी चाहिए। इस की जगह सबको मिल कर नेचर को लूटना चाहिए।

(ख) समाज का उद्देश्य दरिद्रता और सामाजिक भेद को दूर करना होना चाहिए।

(ग) धनियों का समाज, पैतृक रिक्थ (Here ditament) प्राप्ति पर निर्भर है। फल इसका यह होता है कि बिना लिहाज़ योग्यता और अयोग्यता के एक व्यक्ति बिना पुरुषार्थ ही के धनी

हो जाता है। इसलिए यह प्रथा बन्द हो जानी चाहिए और धनियों के अधिकार में जो उपज के साधन हैं उन सबका आधिपत्य समाज का होना चाहिए।

(घ) सामाजिक भेद दूर होने का (देखो (ख)) उद्देश्य यह नहीं है कि जन्म से प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के बराबर समझा जावे अपितु इन कृत्रिम भेद भावों के दूर होने पर स्वभावतः धर्मानुसार प्रभुत्व योग्यता और बुद्धि के अनुसार स्थापित हो जावेगा।

सेण्ट साइमन ने यह भी चाहा था कि मज़हब की जगह एक प्रकार का वैज्ञानिक आस्तिकवाद स्थापित हो जावे जिसमें ईसाइयत की उत्तमोत्तम आचारिक शिक्षा तथा स्वार्थ रहित होकर ज्ञानानुकरण करना शामिल हों।

(४) फ्रैन्कोइस फौरियर (Francois Fourier १७७२—१८३७) यह व्यक्ति अपठित था परन्तु इस कमी को वह अपने माधुर्य से पूरा करता रहता था—उसकी सम्मति थी कि समाज का सङ्गठन इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें मनुष्यत्व का समावेश हो। पूँजीवाद पारस्परिक सहयोग में बाधक है इसलिए इस बाधा को दूर करके प्रगति शील कृषकों का एक सङ्गठन बनाना चाहिए जिसे अपनी अपनी कुशलता और अपनी अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार विभक्त किया जावे जिसमें प्रत्येक के लिए काम मिलने का प्रबन्ध हो। उत्तम काम का उत्तम बदला मिले और मनोरंजनार्थ भी थोड़ा काम किया जावे। फौरियर विरासत के रखने के पक्ष में था—कला कौशल से जो उत्पन्न हो उसे मजदूरों, मिलमालिकों तथा उत्तम मस्तिष्क रखने वालों में

विभक्त कर देना चाहिए। इस विभाग से सामाजिक भेद यद्यपि दूर नहीं होते परन्तु उन में सहयोग रह सकता है।

(५) लूइस ब्लैंक (Louis Blank १८१३—१८८२)—यह काल्पनिक समाजवादी था जिसने यत्न प्रारम्भ किया कि सुधार के लिए राजसत्ता को काम में लाया जावे। समाजवाद के प्रस्तावों में इसका स्थान समाजवाद के केवल ज़ुबानी जमा खर्च करने वालों और मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद के बीच का समझना चाहिए। इसने अपने पहिले ग्रन्थ 'Organization du Travail' में जो उसने १८३६ ई० में लिखा था, पूँजीवादियों के आर्थिक व्यवस्था की बहुमूल्य आलोचना की थी और उसका यह यत्न फ्रांस की आर्थिक समस्या के सुधार का पहला यत्न समझा जाता था। यह राज्यसत्ता का विरोधी नहीं था किन्तु उसे सुधार का साधन मानता था उसकी सम्मति में राजनैतिक क्रांति से पहले आर्थिक सुधार आवश्यक था।

(क) श्रम का बदला

साइमन के अनुसार यह बदला किये हुये काम पर होना चाहिये, फौरियर पैदावार को मजदूर, धनी और अच्छे मस्तिष्क वालों में बांटना चाहता था परन्तु इन से सर्वथा भिन्न ब्लैंक का नया फारमूला यह था "प्रत्येक से उसकी शक्ति के अनुसार लेकर, प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार देना।"[1]

(1) अंगरेजी के शब्दों में:—"From each according to his powers, to each according to his needs. (A history of socialisn by sally groves p 34)

समता ब्लेंक के अनुसार, यथाभाग होती है। पूर्णतया समता सचाई के साथ उसी अवस्था में हो सकती है जब प्रत्येक व्यक्ति, ईश्वरप्रदत्त शारीरिक सामर्थ्यानुसार, जितनी पैदावार वह उत्पन्न कर सकता है, करे और उसमें से अपने लिये उतनी रक्खे जितनी उसकी ज़रूरत है।

(६) पियर्स जोजेफ प्रौडहन

प्रौड्डहन ने ब्लेंक के उपर्युक्त ग्रन्थ के एक वर्ष बाद एक ग्रन्थ संपत्ति के प्रकार [2] विषय पर निकाला, उसमें उसने संपत्ति को चोरी का माल बतलाया था कारण उसने यह दिया कि वह अन्यों के श्रम से उत्पन्न होती है और लगान, व्याज, और लाभ के रूप में, बिना परिश्रम किये, उनसे लेली जाती है। इसके बाद उसने एक और ग्रन्थ लिखा जिस में पूँजीपतियों के धनार्जन के ढंगों की आलोचना करते हुये एक उद्धृतभाग रहित (Nodiscount Bank) बेंक खोलने का प्रस्ताव किया था। उसके अनुसार समाजवाद की उन्नति की चरम सीमा यह होनी चाहिये कि पूर्णतया प्रतिफल में समता रखते हुये, एक स्वतन्त्र समाज की स्थापना हो और उसमें अशासन का साम्राज्य हो। उसकी शिक्षाओं का फ्रांस और रूस में बड़ा प्रभाव था।

---

(2) A pamphlet on the nature of property by P. J. Proudhon.

चौथा अध्याय

मार्क्स के वर्गवाद का जन्म

(१) प्रारम्भ

समाज वाद के रूप, जो इस से पहले इंगलैंड और फ्रांस में बने थे और जिनका विस्तार ओविन, साइमन, फौरियर और प्रौडहुन आदि ने किया था, काल्पनिक समझे जाते थे क्योंकि उन के साथ क्रिया का अभाव था। कार्लमार्कस ने इस कमी के पूरा करने का न केवल यत्न किया अपितु उस ने अपने वर्गवाद को वैज्ञानिक रूप भी दिया। कार्लमार्क्स डाक्टर आव फिलौसोफ़ी था। उसका साथी ऐन्जिल भी एक अनुभवी विद्वान् था। ये दोनों युवक थे। कार्य आरम्भ करते समय मार्क्स की आयु २६ और ऐन्जिल की २७ वर्ष की थी। ये दोनों प्रारंभ ही से इंगलैंड और फ्रांस की घटित घटनाओं पर दृष्टि रखते थे। सच तो यह है कि इन दोनों की घटित घटनाओं ने ही इन युवकों का ध्यान कार्रवाई की ओर आकर्षित किया था। ऐन्जिल ने तो एक ग्रन्थ भी इंगलैंड के संबंध में (The Condition of Working classes in England) प्रकाशित किया था। मार्क्स ने अपने वाद के प्रचार के लिये सब से पहले यह काम किया कि एक विज्ञप्ति द्वारा अपने सिद्धांतों को प्रकट किया।

मजदूरों के पहले अन्तर्जातीय संघ के समाप्त होने के कुछ महीनों के वाद मार्क्स ने एक विज्ञप्ति निकाली थी, यह संघ १८४८ ई० में संगठित हुआ था। वह विज्ञप्ति यद्यपि वर्गवाद संघ के लिये लिखी गई थी, जिसका संगठन नवीन ढंग से किया गया था, परन्तु उस में जो कुछ लिखा गया था, वह इन दोनों युवकों के वर्षों की खोज और अध्ययन का परिणाम था। उस में कुछ नई बातें नही थी अपितु वे उसी प्रकार की बातें थी जो इससे पहले इस विषय के विद्वानों ने लिख रक्खी थीं। विज्ञप्ति की भूमिका में मार्क्स ने जो कुछ लिखा था वह "डी वोनैल्ड" और "ली मैस्टरि" (De Bonald & Le Maistre) के अनुदारवाद (Anti-liberal theory) से मिलता जुलता था उसमें 'पैन" (Paine) जैसे व्यक्तियों के "क्रमशः वर्धमानवाद की गुन्जाइश नहीं थी। पैन के इस वाद का आधार प्राकृतिक नियम और मनुष्य की सफलता के विचार थे। अस्तु अब हम मार्क्स की इस विज्ञप्ति पर एक दृष्टिपात करना चाहते हैं।

(२) मार्क्स की विज्ञप्ति

विज्ञप्ति मार्क्स के निम्न ५ सिद्धान्तों को प्रकट करती है:—

(३) मार्क्स की विज्ञप्ति

(१) संसार के समस्त इतिहास, मानवी श्रेणियों के संघर्षण के इतिहास होते हैं। यह संघर्षण, एक श्रेणी की मांगों और दूसरी श्रेणी का मनोरंजन और विशेषाधिकारों के देने में आना कानी करने से, हुआ करता है।

(२) पैदावार की उत्पत्ति के साधनों और पैदावार करने

में जो श्रम किया जाता है इनके सम्बन्ध में कौन क्या करता है, इससे श्रेणियों की पहचान हुआ करती है।

(३) वर्तमान संघर्षण दो श्रेणियों में है जिनमें से एक श्रेणी उत्पत्ति के समस्त साधनों पर अधिकार रखती है और उन्हें अपने लाभार्थ प्रयोग करती है और दूसरी श्रेणी मजदूरों की है जिनका अधिकार है कि मज़दूरी लेकर काम करें या न करें। पहलों को साधनोत्पत्ति का मालिक और दूसरों को श्रमजीवी कहते हैं। इनमें वर्तमान संघर्षण का कारण यह है कि पहली श्रेणी संपत्ति रखती हैं और उसे वह अनेक प्रकार के अपने मनोरंजनों में व्यय करती है और दूसरी श्रेणी पूंजीशून्य है वह केवल उतना सुख भोग सकती है जिसे यह अपने मज़दूरी के पैसों से क्रय करती है।

(४) संघर्ष श्रेणी का उद्देश्य यह है कि एक ऐसे समाज की स्थापना करे जिसके व्यक्ति सम्पत्ति के मालिक न हों और समान समता पर निर्भर हों। अवश्य उत्पत्ति के साधनों का मालिक प्रति समाज होगा—इस प्रकार एक श्रेणी से संपत्ति के अधिकारों को लेकर उसे समष्टि रूप से समाज के हवाले कर देने से श्रम जीवियों को इच्छित सुगमताएँ स्वयमेव प्राप्त होसकती हैं।

(५) पूंजीपतियों ने अपनी आर्थिक और राजनैतिक नीती से ऐसा मार्ग निश्चय कर रखा है कि जिससे श्रमजीवियों को अपनी आर्थिक और अन्य सुगमतायें स्वयमेव त्याग देनी पड़ें।

उदाहरण के लिए देखो कि एक कारखाने में बहुत से मजदूरों को जमा करके धनियों ने इनके लिये यह सम्भव कर रक्खा है कि वे सब मिल कर उन (धनियों) से अच्छा व्यवहार कराने के लिये हड़ताल कर सकें। (भाव इसका यह है कि इससे मज़दूरों को तो भूखा रहना पड़ेगा।) इसके सिवा धनियों की पारस्परिक

स्पर्धा से वस्तुओं के मूल्य सस्ते हो जाने और परिक्षीणता के प्रभाव से जहां स्वयं उन्हें हानि होती है वहां श्रमजीवियों के जीवन निर्वाह के नियमों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। श्रमजीवियों को अच्छा कार्यकर्ता बनाने की इच्छा से, शिक्षा देकर धनी लोग उसमें से कुछ एक को अपना अच्छा सहायक भी बना लिया करते हैं। उपर्युक्त सिद्धान्तों का विवरण देते हुये विज्ञप्ति में कुछ एक और बातों का भी उल्लेख किया गया है जिन का विवरण इस प्रकार है :—

(१) वर्गवादियों का कर्तव्य है कि वे श्रमजीवियों को भली भांति बतलावें कि उनका लाभ किसमें है।

(२) यदि युद्धकर्ता शत्रु, मज़दूरों की स्वतंत्रता का विरोधी हो तो उसके विरुद्ध युद्ध में वर्गवादी भाग ले सकते हैं।

(३) श्रम जीवियों के लिये आवश्यक है कि सार्वजनिक सम्मत्याधिकार प्राप्त करने के लिये यत्नवान रहें।

(४) जहां संभव हो वहां वर्गवादी यत्न करें कि राज्य के उच्च पदों और समाचार पत्रों को, प्रजातंत्रीय साधनों से अपने अधिकार में रक्खें।

(५) इसकी कोई संभावना नहीं है कि पूंजीपति, श्रम-जीवियों के प्रतिनिधियों को ऐसा क़ानून बनाने दें जिससे पूंजी-पति शासक श्रेणी से बहिष्कृत हो जावें। इसलिये श्रम जीवियों को चाहिये कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये, शस्त्र शक्ति से काम लेने के लिये भी तय्यार रहें। मार्क्स की इस विज्ञप्ति पर विचार से पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उसने जो बातें और इस संबंध में कही हैं उनका भी यहां उल्लेख कर दिया जावे :—

(४) मार्क्स के अन्यसिद्धांत

मार्क्स ने उन वादों को, जिन्हें उसने अपनी विज्ञप्ति में अंकित किया है, अपने ग्रन्थ "कैपिटल" में जिसका पहला भाग १८६७ ई० में प्रकाशित हुआ था और दूसरा भाग उसके कुछ समय बाद पुष्ट किया है। जो अन्य ग्रन्थ उसने पीछे से लिखे हैं उनमें भी सिद्धान्तों की पुष्टि की है। उसके कुछ एक और भी सिद्धांत थे उस का एक वाद भृत्यातिरिक्त वाद (Theory of Surplus Value) है अपने ग्रन्थ 'कैपिटल' में उसने इसकी विशुद व्याख्या की है। अंगरेज़ी भाषानुवादक "कोल" ने कैपिटल की भूमिका में लिखा है कि मार्क्सके अनुसार भृत्यारिक्तवाद केवल ग़रीबों के लूटने का नाम है। इस वाद के अनुकूलता में मार्क्स ने उन समस्त बातों का संग्रह किया है जो पूंजी पतियों में ग़रीबों के लूटने में काम में आया करती हैं। और जिसका विवरण, यथा स्थान, आगे के पृष्ठों में आवेगा। उसका दूसरा वाद है "राज्य वाद"। मार्क्स ने राज्य को समष्टि रूप से प्रजा की निर्वातक संस्था बतलाया है। कोल ने इस संबंध में लिखा है कि धनियों के लिये एक विधान और ग़रीबों के लिये दूसरा, यह नियम उतना ही पुराना है जितनी पुरानी धनिकता और दरिद्रता है। उसका तीसरा वाद "श्रेणीशून्य समाज" है। मार्क्स का कहना है कि आर्थिक अपहरण और राजनैतिक प्रभुत्व, ये दोनों बातें, इतिहास साक्षी है कि श्रेणी २ में पलटाये चली जाती हैं। उसकी दृष्टि में मानव इतिहास, आर्थिक और राजनैतिक संघर्षण का क्रम-पूर्वक विवरण होने के सिवा और कुछ नहीं है और यह जारी भी बराबर उस समय तक रहेगा जब तक कि राज्य और माल की उत्पत्ति में श्रेणी भेद रहेगा। पूंजी पतियों और श्रमजीवियों का पारस्प-

रिक संघर्षण मार्क्स की दृष्टि में, विकास कार्य प्रणाली की एक लड़ी है। मनुष्यत्व के दौड़ की अन्तिम लड़ी श्रेणीशून्य समाज ही होगी।

(५) इन सबका निष्कर्ष | मार्क्स के सिद्धान्त, पुनरुक्ति आदिमयों के निकाल, देने के बाद मुख्यतया ये रहते हैं :—

(१) पूंजीपतियों और श्रमजीवियों में बड़ाई छुटाई का भेद न रह कर समता होनी चाहिये।

(२) उत्पत्ति के साधनों का मालिक समाज हो।

(३) समाज श्रेणी सहित होना चाहिये।

(४) राज्य पर अहिंसा अथवा हिंसा जिससे भी काम लेने में सफलता हो काम लेकर अधिकार प्राप्त करना चाहिये क्योंकि बिना राजबल के मार्क्सवाद नहीं फैल सकता।

(५) सार्वत्रिक सम्मत्याधिकार की प्राप्ति करनी चाहिये।

(६) मजदूरों की आर्थिक अवस्था ठीक करने के लिये उसने भृत्यातिरिक्तवाद आदि वादों का वर्णन किया है।

(७) मार्क्स की दृष्टि में जगतोद्धारक समस्या केवल आर्थिक समस्या है। इसी लिये उसने इतिहास को केवल भूतात्मिकवाद प्रतिपादक बतलाया है।

इनके सिवा उसके अन्य समस्तवाद इन्हीं के अन्तर्गत आ जाते हैं। इस लिये अब हम इनमें से एक एक वाद पर आगे के पृष्ठों में विचार करेंगे। ऐसा विचार करने में हम इन बातों की तरतीब अपने ढंग से क्रम के ठीक बनाने की दृष्टि से, दे लेंगे। ऐसा करने से कोई भी बात विचार में आने से न छूटे इसका पूरा ध्यान रक्खा जायगा।

पांचवां अध्याय

"मार्क्सवाद पर विचार"

मार्क्स ने एक जगह वर्णन किया है कि "वस्तुओं के उत्पादन में, जो मनुष्यों द्वारा किया जाता है, मनुष्यों को अन्यों के साथ अनिवार्य रीति से, चाहे वह उनकी इच्छा के विरुद्ध ही क्यों न हो, सम्बन्ध जोड़ना पड़ता है। अवश्य ये संबंध, उनकी भौतिकोत्पादन शक्ति के विकास का कारण बनते हैं। इन औत्पादक संबंधों ही से, समाज का आर्थिक ढांचा बना करता है। इस आर्थिक ढांचे के बन जाने से, वैधानिक, राजनैतिक और सामाजिक ज्ञानोपलब्धि होती है। प्राकृतिक जीवन में, इन उत्पत्ति के प्रकारों से, जीवन के सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक कार्य प्राणियों के साधक चरित्र का निर्माण हुआ करता है।"[1] मार्क्स के ये विचार प्रकट करते हैं कि उसकी दृष्टि में आर्थिक समस्या के सुलझ जाने से लोक और परलोक सभी काम सुधर जाते हैं। परन्तु यह विचार दूषित और जगत् रचनाओं और उसके प्रकारों के न समझने ही से उत्पन्न हो सकते हैं। मनुष्य

(१) क्या जीवोद्धारक समस्या केवल आर्थिक समस्या है?

(1) Critique of political economy by Earl Marks.

तीन वस्तुओं का समुदाय हुआ करता है :—(१) स्थूल (दिखाई देने वाला) शरीर, (२) सूक्ष्म शरीर जो मन बुद्धि आदि अन्तः करणों का समुदाय होता है और जिसके विकास से मानसिक उन्नति हुआ करती है, (३) आत्मा—जो अप्राकृतिक होता है और जिसकी उन्नति की चरम सीमा बाहर के साधनों से नहीं अपितु भीतर के साधनों से प्राप्त हुआ करती है। जिन्हें निदिध्यासन (Intuition या Intuitional perception) आदि नामों से पुकारा करते हैं स्थूल शरीर और एक दरजे तक सूक्ष्म शरीर भी आर्थिक समस्या के सुधारी हुई होने से, सुधर जाया करते हैं परन्तु आत्मिकोन्नति, आर्थिक अवस्था के अच्छी हो जाने से किस प्रकार हो सकती है ? इस बात पर मार्क्स ने विचार नहीं किया, बुद्ध, ईसा, शंकर, दयानन्द आदि सभी सुधारकों ने धन को शारीरिकोन्नति का ही कारण माना है उससे आत्मिकोन्नति नहीं हो सकती। वह आत्मिकोन्नति में बाधक तो हो सकता है। रोमन कैथोलिक पादरियों के उत्कर्ष काल में अनेक मठ और संघ यतियों और ब्रह्मचर्य व्रतधारी पोपों और पादरियों के बने परन्तु ये सब इसी लिये आचारिक दृष्टि से फेल हुए कि इनमें धन के लिये लोलुपता के भाव उत्पन्न हो गये थे। इसलिये भी फेल हुए कि इनमें मनु के अनुसार व्यवसाय के साथ धार्मिकता या धार्मिकता के साथ व्यवसायात्मिका बुद्धि, जैसी आश्रम और वर्णों के संबन्ध में उसने वर्णन की है नहीं थी। "गिब्बन" और "लीकाक" ने भी इन मठों और संस्थाओं की असफलता का कारण, उनके निवासियों में मर्यादित जीवन का अभाव और आचारिक जीवन के लिए अनुत्साह के भावों का उत्पन्न हो

जाना ही प्रकट किया है ।[1]

(२) उस महोदय ने भी, इस बात पर विचार करते हुये कि मार्क्स इज्म क्यों नहीं पनप रहा है उसका उत्तर यह दिया है कि "इस बाद को क्रियात्मक रूप देने में कठिनता यह है कि अध्यात्म बाद के रू से, मनुष्यों में उनकी भिन्नता के कारण, भेद का होना अनिवार्य है। जब कि वर्गवाद आरंभ ही से सब में समता चाहता है[2] ।" वर्गवाद का एक दोष यह भी है कि वह विश्वात्मा को नहीं समझता न उसने कर्म विज्ञान पर कभी बिचार किया है। जब पुरुषार्थ में समता नहीं तो उसके फल में समता किस प्रकार हो सकती है ? फलदाता मनुष्य नहीं अपितु वही विश्वात्मा=परमात्मा है । अस्तु । गेलल और रसल ने भी प्रकट किया है कि वर्गबाद की राह में रुकावट का कारण मनोविज्ञान है ।[3]

---

(1) Roman Empire by Gibban ch XXVII तथा Political seicnce by Leacock Part III chII Socialism, ("Premature celibacy and ritirement from the world and seeking of comany instead of solitude caused the moral failure") ये शब्द पीकाक के प्रयोग किये गये हैं ।

(2) Guide to socialism by G, B, shaw P 298.

(3) Political science by Gallal P 387 and Road to freedom by Bertrand Russall.

हिन्डस ने एक जगह लिखा है कि "मार्क्स इज़्म" के रास्ते में तीन रुकावटें हैं जिन्हें अपसह या अशिष्ट कहा जाता है:—(१) धर्म, (२) निजूसंपत्ति और (३) पारिवारिक जीवन—इनकी उपेक्षा करके वर्गवादी एक विलक्षण और भया वह व्यक्ति बनाना चाहते हैं जिस के लिये प्राचीनकाल से सुप्रसिद्ध शब्द धर्म, स्वतन्त्रता, दौलत, घर और परिवार, अपना कोई अर्थ नहीं रखते हैं और जिनके शरीर और मास्तिष्क का एक मात्र उद्देश्य नये बनाये हुए समाज की इच्छा पूर्ति करना है। और यह इच्छा केवल पार्थिव और अपारमार्थिक जीवन से संबंधित है। वर्गवाद में मानसिक, भावविशिष्ट, चित्रकला से संबंधित सभी बातों को स्थूलेन्द्रि ही से संबन्ध जोड़कर सोचा जाता है। मानसिक, आत्मिक, शरीर से भिन्न आत्मसत्ता, पुनर्जन्म और परलोक आदि सभी शब्द उसके लिए निरर्थक हैं।[1] स्पष्ट है कि केवल जड़वाद का आश्रय लेने और आर्थिक समस्या को हल करलेने से, वर्गवाद कहीं भी फूल फल नहीं सकता।

(३) वर्गवाद की राह में रुकावटें

कार्लमार्क्स ने सब कुछ आर्थिक अवस्था के सुधार को ठहराते हुए, इतिहास को भी केवल भौतिकवाद प्रतिपादक ठहराया है जिससे प्रकट होता है कि मार्क्स की दृष्टि में प्रकृति के सिवा जगत में और कुछ नहीं है। यह बात आम तौर से न तो जगत् में कभी स्वीकार की गई और न अब स्वीकार की जाती है—विशेष कर इस देश का तो

(४) इतिहास का केवल भौतिकवाद प्रतिपादक होना

(1) The great offencive by Maurice Hindus published in 1933.)

बच्चा बच्चा भी जानता है कि जगत् बनाने वाली केवल प्रकृति नहीं अपितु पुरुष (ईश्वर) भी है और उस जगत को व्यवहार में लाने वाला दूसरा पुरुष (जीवात्मा) है। इसलिए जगत् की व्याख्या का इतिहास न केवल भौतिक अपितु प्रकृतिपुरुषात्मक होना चाहिए।[1] डाक्टर भगवानदास की सम्मति में, मार्क्स के लेखानुसार, इतिहास का केवल भौतिकवाद की व्याख्या होना, सत्यता का छोटा आधा है। आत्मवाद, आदर्श (अद्वैत) वाद, शूरत्व मिलकर प्रकृतिपुरुषात्मक इतिहास का बड़ा आधा है।[2] अस्तु; यहां भी विचारणीय है कि संसार में वृद्धिवाद के जन्म दाता आत्मिकोत्कर्ष प्राप्त किये हुए व्यक्ति, केवल प्रकृति से कैसे बन गये, उन में चेतना कहां से आई? इन और इस प्रकार के अन्य प्रश्नों के उत्तर, इतिहास की, केवल भौतिक वा व्याख्या से नहीं दिये जा सकते। मार्क्स के पक्ष पोषक एक व्यक्ति ने इन आक्षेपों का उत्तर इस प्रकार दिया है:—"जिस प्रकार प्रकृति के असीम मिश्रणों से, पीच (फ़ारस का सेव), डौकवेरी (The berry of Dogwood) एक दूसरा फल, ट्यूलिप (Tulip) पगडी की तरह का एक तुरकी का फूल, इत्यादि पैदा हो जाते हैं। इसी प्रकार इन मिश्रण से

(1) डाक्टर भगवानदास ने इसके लिए इसी वास्ते एक जगह लिखा है कि—("Spritu materealist interpretation of history होना चाहिए (Ancient V. Modern Socialism by Dr. Bhagawan Dass.)

(2) Aneient V. Modern Socialism by. Dr. Bhagawan Dass p 27.

ईस्टीन (Enstein) जैसे वैज्ञानिक और मूर्ख भी पैदा हो जाते हैं।[1]

(२) इस बात का उत्तर, कि आत्मबलिदान की भावना प्राकृतिक है अथवा बुद्धि जन्य या ईश्वर प्रदत्त अथवा अन्य किसी गूढ कारण का कार्य है? इस प्रकार दिया गया है "एक प्रकार का मनुष्य का चरित्र है जिस के द्वारा मनुष्य आत्म-बलिदान आत्मत्याग, सेवा और तपस्या किया करता है। मार्क्स वादी ऐसे अंधे नहीं हैं जो इस चरित्र की सत्ता से इन्कार करें।[2]"

(३) "मनुष्य का चरित्र, मार्क्स वादियों के अनुसार, (क) प्राणी शास्त्र (धमनि, शिरा, स्नायु और मांसपिंड के ढाँचे) और (ख) गृह शिक्षा, संघ आदि सामाजिक कृत्यों के प्रभावों का संघात है। आजकल की भाषा में एक विशेष प्रकार के चरित्र को परमार्थ निष्ठा (Spiritual) कहा गया है परंतु वह प्राणी शास्त्र और सामाजिक प्रभावों से पृथक् कोई वस्तु नहीं है। इसी चरित्र को वैज्ञानिक भाषा में प्राकृतिक कहा जाता है।

मार्क्सवाद में भी आत्मज्ञान (परमार्थनिष्ठा) प्राकृतिक कहे जाते हैं। निश्चित रीति से ये प्राणी शास्त्र और समाज के प्रभावों से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। इन्हें कदापि प्राकृतिक नहीं कह सकते।[3] अब इन पर थोड़ा विचार करना चाहिए।

(४) मार्क्स के पक्ष पोषक के दिये उपर्युक्त विवरण से

1—Why socialism by Jai Prakash Narain p 112,

2— Do p 112&113,

3—Why socialism by Jai Prakash narain p 113,

यह बात स्पष्ट है कि वह संसार में प्रकृति के सिवा किसी दूसरी वस्तु की सत्ता नहीं मानता परन्तु वह इन उत्तरों में यह नहीं बतला सका कि चेतना (Conscious ness) फिर जगत् में कहां से आगई ? जामन को एक प्राणीशास्त्रज्ञ हैकल ने, जो आत्मसत्ता को नहीं मानता था कि वह कोई स्वतन्त्र सत्ता है, मनुष्य के शरीर के बनावट की व्याख्या प्रकृति ही से करने का यत्न किया था। अनेक कल्पनाओं के करने के बाद निर्जीव शरीर जब बन गया तो अब प्रश्न आया कि उसमें चेतना कहां से आवे ? तो इस प्रश्न के आते ही उसका बनाया हुआ प्राकृतिक भवन एक साथ धंम से गिर पड़ा और उसे स्वीकार करना पड़ा कि चेतना की वैज्ञानिक जांच नहीं हो सकती, इसलिये कि जांच करने वाली चीज़ भी तो वही चेतना ही है। इसलिये जो परीक्षा है वही परीक्षक भी।[1] इस प्रकार देख लिया गया कि प्रकृति से पुरुष नहीं बन सकता न चेतना की उत्पत्ति और किसी प्रकार से हो सकती है। पक्षपोषक ने चेतना की उत्पत्ति को खाला जी का घर समझ रखा था कि उसे बातों बातों के द्वारा ही प्रकृति से उत्पन्न कर लेंगे परन्तु यह नहीं सोचा कि उससे पहले बड़ों बड़ों की गाड़ी यहां आकर अटक चुकी है और यही कारण है कि जड़वाद आज तक फूल फल नहीं सका।

इसलिये इतिहास को केवल भौतिकवाद प्रतिपादक मानना, सर्वथा भूल है। मार्क्स के इस सिद्धांत पर, कि आर्थिक समस्या के सुधार ही से सब कुछ हो जाता है, जब आक्षेपों की भर मार हो गई तो उसे गंभीरता के साथ अपने सिद्धांत पर दृष्टि

(५) कार्लमार्क्स का पश्चाताप

1—Riddle of the universe by Ernest Hecal,

डालनी पड़ी और अंत में उसे इसके लिये पश्चाताप करना पड़ा। "सैलीग्रेव्स" ने एक जगह लिखा है कि "इस में ज़रा भी संदेह नहीं कि वह (मार्क्स) इस आर्थिक सुधार को प्रबल साधन मानता था परन्तु जीवनान्त में, वह तथा उसका साथी "इनजिल्स", दोनों इस बात से दुखी थे कि क्यों उन्होंने, आर्थिक सुधार को एक मात्र साधन जीवनोद्धार का माना, उन दोनों ने साक्षात् और असाक्षात् अपने अपने आवेदनों से इस बात को स्वीकार किया कि (आर्थिक समस्या से भिन्न) विचार और उनके लिये आग्रह करना भी अपने लिये समुचित रीति से पृथक् स्थान रखते हैं यद्यपि उनका निकास अंत में उत्पत्ति के साधनों ही से किसी न किसी प्रकार संबंधित होता है परन्तु उनकी पृथकसत्ता बनी रहती है। और नये विचार अन्य श्रेणी के विचारों के साथ जुड़ जातते हैं। जिन से आरम्भ में उनकी असंवद्धता होती है।"[1] अस्तु; स्पष्ट है कि मार्क्स अंत में इस विषय का पक्षपोषक नहीं रहा और उस का साथी इन ज़िल्स भी केवल आर्थिक समस्या के सुलभ जाने से जगत् की समस्त समस्यायें सुलभ जाती हैं। इसलिये अब इस विषय को हम यहां समाप्त करके आगे चलते हैं और बाक़ी के विषयों में से प्रत्येक को क्रम पूर्वक लेने का यत्न करेंगे।

(२) पूंजीपतियों और श्रमजीवियो में बड़ाई छुटाई का भेद न रहकर समता होनी चाहिये।

(१) इस शीर्षक में मार्क्स के दिये हुये कई विषय आ जाते हैं। उसने पूंजीपतियों और मज़दूरों में छुटाई बड़ाई का भेद न

---

(1) A History of Socialism by Sally Grovees p-56.

रह कर समता लाने का उद्देश्य प्रकट करते हुये विषमता के कारण इस प्रकार प्रकट किये हैं:—

(१) पूंजीपति साधनोत्पत्ति (मिल, भूमि आदि) के मालिक हैं। मज़दूरों को जो वे मज़दूरी देते हैं, उस पर उन्हें निर्वाह करना पड़ता है।

(२) पूंजीपति संपत्तिवान् हैं और राज्य में बड़ा रसूख रखते हैं इसलिये वे राज्य शासन द्वारा भी मज़दूरों को दवाये रखने के प्रयत्न करते रहते हैं।

(३) धनवान् होने से वे मनोरंजनों में अधिक धन व्यय कर सकते हैं जब कि मज़दूर मज़दूरी से कठिनता से अपना पेट भरते हैं और उन मनोरंजनों से वंचित रहते हैं।

ये और इस प्रकार के जितने भी विषय उपस्थित किये जाते हैं उनका आधार श्रममूल्यवाद (The labour theory of value) ही है। १६ वीं शताब्दी के समस्त संपत्तिवाद इसी के आधार पर बने थे। "थामस होज्सकिन ने इसी वाद के आधार पर इंगलैण्ड के अर्थ शास्त्रियों का विरोध किया था—[1] मार्क्स ने भी अपने 'पूंजीपतियों के एकीकरण और श्रमजीवियों के दारिद्र्यवाद" को स्थापना इसी (श्रममूल्यवाद के) आधार से की थी[2] मार्क्स के विचार ये थे कि यदि पूंजीपतियों के इस धन एकत्री-

(1) Labour defended against the claims of capital by Thomas Hodgskin.

(2) अंगरेजी के शब्द इस वाद के ये हैं:—"The theory of capitalist-concentration and Prolatarian pauperization."

करण की प्रवृत्ति को जारी रहने दिया जावे तो सारी संपत्ति के मालिक कुछ एक व्यक्ति, जो बाज़ार के अंतिम विजेता होंगे, हो जावेंगे और मज़दूर बुरे से बुरे परिणाम पर पहुँचने के लिये बाध्य होंगे। मार्क्स के समस्त संघर्षण का आधार यही वाद था। मार्क्स ने इस अवस्था को न आने देने के उद्देश्य ही से क्रान्तकारी प्रोग्राम पर बल दिया था और राजनैतिक क़त्ल (Political murder) भी उसी समय जायज़ ठहराये जाने लगे थे।[1]

मार्क्स के विरुद्ध अनेक वर्गवादी

मार्क्स ने जितना बल मिल मालिकों अथवा पूंजीपतियों और मज़दूरों की समता पर दिया उतना ही उसके विरुद्ध आन्दोलन बढ़ता गया। कुछ एक ने तो यह प्रकट किया कि समस्त मज़दूरों में भी समता नहीं हो सकती। मार्क्स ने निश्चय कर रक्खा था कि इन पूंजीपतियों और मज़दूरों में असमता का मुख्य कारण भृत्यारिक्तवाद(Theory of surplus value) था। इसी प्रकार वेब (Wabb) के सामाजिक विकासवाद का आधार राजस्ववाद था। वेब का यह वाद प्रायः मिल के भूमि सुधार के विचारों का विकासित रूप ही था। इस वाद का अभिप्राय यह है, जैसा कि वेब ने प्रकट किया है कि जब समाज पुष्ट होता और अपनी ज़रूरत से अधिक पैदावार कर लेता है तो उसी अधिक पैदावार पर संघर्षण होता है कि उसका मालिक कौन हो ? तो समाज में जो श्रेणी अधिक बलवान होती है वह उस अधिकता का स्वामित्व ग्रहण कर लेती है और बाक़ी में से निर्बल श्रेणी वाले मज़दूरों को, मज़दूरी के रेट

(1) A History of socialism by Sally Graves p. 81

से, मज़दूरी मिल जाती है। इस अधिक पैदावार की स्थिति राजस्व की सी होती है। जो भूमि अधिक उपजाऊ और स्थान आदि की दृष्टि से अधिक उपयोगी समझी जाती है उसकी पैदावार अन्यों की अपेक्षा अधिक होती है और उसका राजस्व भी अधिक होता है, उसके प्राप्त करने में धन भी अधिक व्यय होता है। ऐसी भूमि के राजस्व को "अमुक्त हस्त राजस्व" कहते हैं। निजू संपत्ति के नियम तथा स्वतंत्र प्रतियोगिता, की मर्यादा से वह व्यक्ति जो उस भूमि का मालिक है, अधिक पैदावार का मालिक वही बनता है। मार्क्सवाद चाहता है कि उस अधिक पैदावर का मालिक समाज हो परन्तु यह उस समय तक नहीं हो सकता जब तक उस भूमि के मालिक ने, अब तक जो व्यय उस भूमि के संबंध में किया है, उसे समाज न चुका देवे। यदि क्लिष्ट कल्पना के तौर से यह मान भी लिया जावे कि समाज उसका मालिक हो तो समाज उसका बटवारा करेगा। वह भी तो श्रमजीवियों को योग्यता के अनुसार ही देगा। सब को बराबर तो नही दे सकता। अवश्य कम से कम वेतन पाने वालों की मज़दूरी इतनी होनी चाहिये जिससे एक मज़दूर सभ्यता का जीवन व्यतीत कर सके। अधिक मज़दूरी जो दूसरे को मिलेगी उसे उसकी योग्यता का राजस्व समझना चाहिये।[1] स्पष्ट है कि प्रश्न पूंजीपति और मज़दूर के बराबर करने का नहीं है अपितु मज़दूरों के भी पारस्परिक बराबरी का प्रश्न है। जो वैज्ञानिक खोज करते हैं जो मस्तिष्क से काम करते हैं जो इनजीनियर आदि हैं उनकी मज़दूरी और एक कुली की

---

(1) A History. of socialisn by Sally Gravs. P 109&110

मज़दूरी बराबर किस प्रकार हो सकती है ? यहां एक उदाहरण दिया जाता है जिस से यह बराबरी का प्रश्न सदा के लिये तय हो जावेगा।

रूस का एक उदाहरण

वर्गवाद के सिद्धान्तानुसार प्रत्येक की, दैनिक या मासिक मज़दूरी काम की दृष्टि से नहीं अपितु उसकी पारिवारिक आवश्यकतानुसार मिलनी चाहिये परन्तु काम प्रत्येक को अपनी अपनी योग्यतानुसार करना चाहिये। कल्पना करो कि साईबेरिया प्रान्त का एक गवर्नर है, उसके परिवार में वह और उसकी पत्नी दो प्राणी हैं। परन्तु उसके अरदली के परिवार में पति पत्नी के सिवा दो पुत्र भी हों अर्थात् उसके परिवार में चार व्यक्ति हों तो यदि वर्ग वाद के नियमानुसार वहाँ एक आदमी का निर्वाह ३०) मासिक में होता हो तो उस वायसराय को मासिक वेतन ६०) और उस के अरदली को १२०) मासिक मिलेंगे परन्तु काम प्रत्येक को अपनी अपनी योग्यतानुसार ही करना पड़ेगा। रूस में जब जब "जारडम" के बाद लीनन ने मार्क्स के वर्गवाद को प्रचलित किया तो अयुक्त नियम ही प्रचलित किया गया था अर्थात् एक इञ्जीनीयर और एक कुली बराबर बराबर वेतन पाते थे परन्तु काम प्रत्येक को अपना २ ही करना पड़ता था। जब विज्ञ श्रेणी के लोगों ने देखा कि यह तो अंधेर नगरी है, यहां सब प्रकार के धान बाईस पन्सेरी ही बिकते हैं तो उन्होंने रूस छोड़ कर उन देशों को खिसकना शुरू कर दिया जहां यह अंधेरगरदी नहीं थी। स्टेलिन ने जब देखा कि विज्ञ श्रेणी के मज़दूर इञ्जीनीयर आदि उस के कारखानों से भाग रहे हैं तब उसे विवश होकर मज़दूरी

में नावरावरी के सिद्धांत को स्वीकार करना पड़ा अन्यथा उसकी ५ वर्ष वाली योजना, असफलता का मुंह, अनिवार्य रीति से देखती। उस (स्टेलिन) ने एक शिल्प और कलाविभाग से संबंधित व्यक्तियों के सम्मेलन में कहा:—"प्रत्येक व्यवसाय और प्रत्येक कारखाने एक उन्नत समुदाय विज्ञ श्रेणी के कार्य कर्त्ताओं का है, उन्हें केवल उसी अवस्था में रखा जा सकता है कि उन की वेतनवृद्धि की जावे। और उनकी मज़दूरी बढ़ा दी जावे। उसने अपने कथन में वृद्धि करते हुए कहा:-"विशेषज्ञों को पीड़ित रखने की प्रथा को हम सदैव हानिप्रद और अपकीर्तिमय कार्य समझते रहे हैं। इसलिये इञ्जीनीयरों और पुराने स्कूल के शिल्पियों के संबंध में, हमें, अपनी प्रवृत्ति बदलनी चाहिए और उन की अधिक परवाह करते हुए उनका हमें अधिक ध्यान रखना चाहिये और उन्हें उत्साहित करना चाहिए जिस से वे हमारा काम करें। कुछ एक हमारे साथी समझते हैं कि अपने कारखाने में हमें पदों पर केवल वर्गवादियों ही को नियुक्त करना चाहिये। इसी लिये कि वे बहुधा योग्य और निपुण व्यक्तियों को केवल इस लिये कि ये वर्गवादी नहीं होते, निकाल दिया करते हैं और उन की जगह उन से कम योग्य पुरुषों को, वर्गवादी होने के कारण रख लिया करते हैं। मैं कहता हूं कि इस से बढ़ कर वेहूदी और प्रति घातक नीति और कोई नहीं हो सकती। इस से वर्गवादी समुदाय विश्वसनीय नहीं रहेगा और अवर्गवादी कार्यकर्ता उन के विरोधी बन जायेंगे।[1] स्टेलिन की यह वक्तृता स्पष्ट करती

---

1. ८ अगस्त १९३१ के दैनिक लीडर में इस प्रकार का एक नोट छपा था:—

हैं कि श्रमजीवियों में मज़दूरी की समता का सिद्धांत मार्क्स के नियमानुसार जो लोनन ने रूस में प्रचलित किया था, वह सफल नहीं हो सका और स्टेलिन उस के बदल देने के लिये वाधित हुआ। स्टेलिन की वक्तृता से यह भी प्रकट होता है कि उस की दृष्टि में पार्टी के लाभ की अपेक्षा देश का लाभ मुख्यता रखता था, और इसी लिये उसने अवर्गवादी को अपनी ओर खींचने का यत्न किया।

"The Experience gained in the working of the five Year plain and the necessity of making it a succes have led M. Stalin to declare that it has become necessary resolutely to put end to the equality in the pay of and unskilled labour. Addressing a conference of industrialists, he stated in mail week:—

In each industry and each factory there are advanced groups of skilled workers who can be retained in employment only by promoting them and raising their wages":... "The persecntion of specialists has always been considered by us as a harmful and disgraceful phenomenon.

Therofore let us change our attitude towards the Engineering and technical forces of the old school, let us offer them

पूंजीपति और मज़दूरों में समता असम्भव है।

उपर्युक्त उदाहरण से यह बात साफ़ हो जाती है कि समस्त मज़दूरों में समता नहीं हो सकती। उन में विज्ञ और अविज्ञ का भेद रहेगा और इसी भेद के कारण उनकी मज़दूरियों में भी भेद रहेगा। जब सब मजदूरों ही में समता नहीं हो सकती, तो फिर मार्क्स का यह चाहना कि पूंजीपतियों और मज़दूरों में विषमता भेद न रह कर समता रहे "खपुष्प" आकाश के फूलों की प्राप्ति की इच्छा करने के सदृश है। यह बात याद रखनी चाहिए कि मजदूरों में विषमता उनकी योग्यता, अयोग्यता और अनयोग्यता

---

more care and attention, let us eneourage them to work for us......a number of comer-ades think that only communists should be appointed in leading positions in our factories. This is why they often remove capable and efficent non party workers putting in there place numbers of the Communist party, although there are less capable and less efficient. I need not say that ther is nothing more stupid or more reactionary than such a policy. It is quite unnecessary to prove that by such a policy the communist party can only be discredited and non-party workers made hostile to our party. (The Daily Leader of Allahabad 8-8-1931)

के कारण है ये और इससे भी बढ़कर अंतर पूञ्जीपतियों और मज़दूरों में हुआ। करता है। पूञ्जीपतियों की विशेषतायें ये हैं जिन का मज़दूरों में प्राय: अभाव हुआ करता है :—

(१) पूञ्जीपतियों में मिल चलाने, उत्पन्न हुए माल के खपाने, माल खपाने के लिये संसार के बाज़ारों के ज्ञान रखने आदि की ऐसी अनेक योग्यतायें हैं जिन का श्रमजीवियों में प्राय: अभाव हुआ करता है।

(२) मिल के पुरजों और मशीनों तथा भूमि और इमारत में लगाने आदि के लिये पर्याप्त धन उन के पास हुआ करता है जिस की मज़दूरी में प्राय: कमी हुआ करती है।

(३) पूंजी रखने के कारण दुनिया के बाज़ारों में उन की शाख हुआ करती है जिस के आधार से वे कभी कभी एक पैसा भी पेशगी न देकर लाखों रुपयों की मशीनें तथा अन्य चीज़ें जहां से चाहें मंगा लिया करते हैं। इस शाख के लिये पूंजी का होना अनिवार्य है।

ये और इस प्रकार की अनेक छोटी बड़ी बातें हैं जो पूंजी पतियों की विशेषायें हैं और जो मज़दूरों में नहीं हुआ करती हैं। ऐसी हालत में उन में समता नहीं हो सकती परन्तु इस समता न होने का अर्थ यह नहीं है और न कभी हो सकता है कि मज़दूरों के सभ्यता पूर्वक निर्वाह के लिये वे मज़दूरी न देवें। उन्हें काफ़ी मजदूरी देनी चाहिये और उन के साथ भाई-बंदी का व्यवहार करना चाहिये। उन के दुख सुख में शरीक होना चाहिये इत्यादि—

(३) उत्पत्ति के साधनों का मालिक समाज हो।

(१) एक वर्गवादी ने [1] लिखा है कि धनोत्पत्ति का साधन भूमि आदि के रूप प्रकृति (Nature) है और उस की उत्पत्ति करने वाले मनुष्य हैं जो अपने परिश्रम से व्यक्त किया करते हैं। समस्त आर्थिक अभिव्यक्ति की तह में काम करने वाले यही नियम हैं। संपत्ति के सग्रह की मर्यादा यह है कि उपर्युक्त भांति जितना धन उत्पन्न होता है उसमें से जितना व्यय हो जाता है इन दोनों के अन्तर सम्पत्तिवान् या पूंजीपति बना करता है। इस प्रकार एक ओर पूञ्जी संग्रह करके लोग पूञ्जीपति बनते हैं और दूसरी ओर उन की उत्पत्ति करने वाले मज़दूर भूखों मरते है। ऐसे पूञ्जीपति अनेक प्रकार के मनोरंजनों में उस धन को व्यय करते हैं परन्तु भूखे मरने वालों की वे परवाह नहीं करते। इस का कारण और एक मात्र कारण, वर्गवादियों की दृष्टि में यह है कि जो मज़दूर पैदावार करते हैं वे उस पैदावार के मालिक नहीं होते और इसी लिये उन्हें भूखों मरना पड़ता है।

(२) एक व्यक्ति बहुत सी भूमि प्राप्त कर लेता है अब वह जिन मज़दूरों से उस भूमि में काम करता है उन की थोड़ी मज़दूरी देकर बाकी पैदावार अपने लिये रख लेता है। इस प्रकार धनसंग्रह करते करते वह पूञ्जीपति बन जाता है। इसी कार्यप्रणाली से धन की मनुष्य में समता नहीं रहती और यह कार्यप्रणाली है जिस से धनी लोग मजदूरों को लूटा करते हैं। इस का कारण यह है कि उत्पत्ति के साधनों का स्वामित्व समाज का नहीं अपितु

---

1. Why socialism by J. P. Narain P. 8. to 19—

व्यक्तियों का है। इसी आधार से वर्गवादी इच्छा करते हैं कि उत्पत्ति के साधनों का मालिक समाज हो।

(३) एक वर्गवादी की दृष्टि से, इस के दो इलाज हैं। उन में से पहला तो यह है कि नये ढंग से बिल्कुल नया समाज बनाया जावे और प्रत्येक व्यक्ति को उत्पत्ति के साधनों में से उतना ही भाग दिया जावे जिसे वह अपने परिश्रम और अपने हाथों से काम में ला सके। यदि यह इच्छा एक बार पूरी भी कर दी जावे तो भी कौन कह सकता है कि व्यक्तियों में समता बनी रहेगी। एक उदाहरण से यह बात भली भांति समझी जा सकेगी :—

एक उदाहरण | मुरादबाद शहर में एक साहूकार की मृत्यु हुई। उस के दो पुत्र थे उस की सात लाख की सम्पत्ति दोनों पुत्रों को आधी आधी मिल गई। बड़ा भाई समझदार था उस ने अपने पिता के कामों को जारी रखते हुये अपने को और भी अधिक धनवान् बना लिया परन्तु दूसरा भाई वे समझ सा था। उसने जुये, अनाचार और विषयों के वशीभूत हो कर गिन्ती के ३ वर्षों में अपनी सारी सम्पत्ति खोकर रोटियों का मुहताज़ हो गया। तब उस के बड़े भाई ने १५) मासिक उसे निर्वाह के लिये देना शुरू किया। उस से उसे रोटी मिलने लगी। मैं समता का कथन करने वालों से पूछता हूं कि अब कितनी बार संपत्ति बराबर २ बांटी जायगी। एक बार तो इन दोनों भाइयों की संपत्ति बराबर हो गई थी परन्तु बराबर रह नहीं सकी, इसलिए कि मनुष्य की प्रकृति भिन्न भिन्न हुआ करती है। एक कुछ चाहता है दूसरा कुछ किस प्रकार कोई सारी दुनियां को एक ढंग से चला सकता है?

दूसरा इलाज वही है जो वर्गवादी प्रस्तुत किया करते हैं

अर्थात् उत्पत्ति के साधनों का मालिक व्यक्तियों को न रहने देना अपितु उन साधनों का मालिक समाज हो। यह चिकित्सा भी फलवती नहीं हो सकती; इसलिए कि यह प्रणाली पूर्णतया काम में नहीं आ सकती और न आने के योग्य ही है। कुछ एक बड़े बड़े काम जैसे रेलों का चलाना अथवा लोहे से सभी प्रकार की वस्तुएं—रेल की पटरी, गार्डर आदि बनाना अथवा रेल के इंजनों और मोटरों का बनाना अथवा युद्ध की सामग्री तय्यार करना आदि ऐसे काम हो सकते हैं जो राज्य द्वारा अथवा बड़ी बड़ी कंपनियां बना कर चलाए जा सकते हैं परन्तु प्रत्येक कार्य उसी प्रकार चलाया जावे यह सम्भव नहीं है। अनेक छोटे बड़े व्यवसाय हैं जो व्यक्तियों द्वारा चलाए जाते हैं और चलाए जा सकते हैं। ज़रूरत सिर्फ इतनी है कि मज़दूरों की मज़दूरी और काम के घण्टों का नियन्त्रण राज्य की ओर से हो। इस के लिए देश और काल को लक्ष्य में रखते हुए वैधानिक नियम बनाए जा सकते हैं। भूमि के सम्बन्ध में ज़िमींदारी की प्रथा अवश्य विचारणीय है।

(४) ज़िमींदारी की प्रथा

प्राचीन काल में इस देश में जिमींदारी प्रथा नहीं थी किसी जगह भी हिन्दू राज्यप्रणाली सूचक ग्रन्थों में मेरे देखने में इस प्रथा का जिक्र नहीं आया। इस देश में पंजाब आदि अनेक प्रान्त है जहां यह प्रथा अब भी नहीं है। इस देश में मुसलमानों से पूर्व कृषक वर्ग अपने पैदावार का नियत भाग साक्षात् राज्य कोष में दाख़िल करते थे अथवा राज्य की ओर से नियत अधिकारियों को दिया करते थे। जब प्रत्येक व्यक्ति स्वयं पैदावार उत्पन्न करके उसका व्यय करने वाला होगा और प्रत्येक व्यय

करने वाला स्वयं उत्पादक भी होगा तो इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि कृषक अच्छी अवस्था में हो जावेंगे। इस समय की यह ज़िमींदारी प्रथा निकृष्ट रूप में है, और अनेक जगह कृषकों पर अत्याचार का कारण बनी हुई है।

एक उदाहरण

मुझे स्मरण है कि एक प्रान्त में, शायद अब से २५—३० वर्ष पहले एक ज़िले के डिप्टी कमिश्नर ने, कृषकों की अवस्था के सुधार के प्रकरण में प्रकट किया था कि मामूली लगान के अतिरिक्त वहां के तअल्लुकेदार ५५ प्रकार के और टैक्स समय समय पर अपने कृषकों से लिया करते हैं। कल्पना करो कि एक ज़िमींदार को मोटर ख़रीदना है तो वह मोटर के मूल्य को अपने कृषकों पर बांट कर उनसे वह दाम वसूल कर लेगा। इस टैक्स का नाम मुटरखन, इसी प्रकार यदि विवाह आदि के अवसरों पर घृत की अधिक जरूरत है तो यह भी कृपकों से वसूल कर लिया जावेगा। इस टैक्स का नाम है घियावन। इसी प्रकार कपड़े की ज़रूरत पूर्ति के टैक्स को कपड़ावन कहते हैं। निष्कर्ष यह है कि तअल्लुकेदार लोग अपनी प्रत्येक असाधारण जरूरतों को इसी प्रकार के टैक्सों से पूरी कर लिया करते थे। इस दूषित प्रथा का एक दुष्परिणाम यह भी है कि जहां जहां यह प्रथा प्रचलित है वहां वहां जिमींदारों और कृषकों की लगभग दो विरादरियां बन गई हैं जो एक दूसरे से सर्वथा अलग अलग सी होकर रहती हैं, और जिमींदार लोग कृषकों तथा निम्न श्रेणी के लोगों पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते रहते हैं। इसलिए इस प्रथा को यथा सम्भव शीघ्र दूर होना चाहिए परन्तु ज़िमींदारी प्रथा के दूर हो जाने पर भी वर्गवादियों को यह नहीं समझना चाहिए कि समस्त

कृषकों में समता हो जावेगी, उनमें विषमता रहेगी और निश्चित रीति से रहेगी। रूस के कृषक इसके उदाहरण हैं। रूस भी भारतवर्ष की तरह कृषि प्रधान देश है।

(५) रूस के कृषक

कृषकों के सम्बन्ध में लीनन ने नियम बनाया कि उन्हें उपार्जित पैदावार में अपनी ज़रूरत की पूर्ति के लिए अन्न रख कर बाक़ी को सरकारी भण्डार में दाख़िल कर देना चाहिए। एक वर्ष तो इस नियम का पालन हुआ परन्तु वह भी आंशिक रीति से। दूसरे वर्ष कृषकों ने अपनी आवश्यकतानुसार ही भूमि को जोता बोया बाक़ी को ख़ाली पड़ा रहने दिया। फल इसका यह हुआ कि सरकारी भंडार में कुछ भी दाखिल नहीं हुआ तो लीनन को अपने नियम में परिवर्तन करना पड़ा। अब परिवर्तित नियमानुसार विधान किया गया कि जो कृषक चाहें अपने अपने खेत सोवियट को दे देवें और स्वयं राज्य की मज़दूरी करें उनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति राज्य करेगा। उस नियम के अनुसार कुछ कृषक अपनी भूमि, रूस की सरकार के हवाले करके स्वयं रूस के सम्मिलित परिवार में शामिल हो गए। बाक़ी अधिकांश कृषकों ने इसे स्वीकार नहीं किया और स्वयं अपनी अपनी भूमियों के मालिक बने रहना चाहा। रूस की बोलशेविक सरकार को इसे स्वीकार करना पड़ा। अब रूस के कृषिकार्य्य करने वाले व्यक्ति ४ भागों में विभक्त हैं।

(१) ग़रीब कृषि का पेशा करने वाले, बिना भूमि वाले जिन्हें वहां बैटराकी Batraki कहते हैं।

(२) छोटे कृषक थोड़ी भूमि के मालिक जिन्हें बैडन जैकी

(Badn jaki) कहते हैं। इनके पास साधन न होने से इन्हें अपनी भूमि सम्पन्न किसानों को लगान पर देनी पड़ती है।

(३) औसत दरजे के कृषक जिन्हें सिरोड जैकी (Seroed jaki) कहते हैं जो अपनी भमि को स्वयं जोतते बोते हैं।

(४) संपन्न कृषक जो बहुत भूमि के मालिक हैं और जिन्हें कुलाकी (Kulaki) कहते हैं और जो मजदूरों को मज़-दूरी देकर खेती कराते हैं और स्वयं अमीरों की तरह से रहते हैं❋ इस प्रकार भूमि के सम्बन्ध में वर्गवाद का परीक्षण सफल नहीं हुआ। जिन लोगों ने अपनी अपनी भूमि सरकार को दे दी है क्या वे इससे सन्तुष्ट हैं? इस पर भी विचार करना चाहिये। सन् १९३० ई० में डाक्टर रवीन्द्रनाथ टागोर रूस गये थे। उन्होंने सरकारी कर्मचारियों के माध्यम से उनसे प्रश्न किया कि वे अपनी भूमि सरकार को दे देने से सन्तुष्ट हैं? तो उन्होंने असन्तोष प्रकट किया था। वे प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं:—

Tagore

I should like to know the opinion some of the iudividual peasants who are here concerning the principle of private property and whether they regret their Surrender of their individual farm holdings.

❋देखो Hindustan Times (Congress number 1942)

Answer

A number of them confessed that they entertained orthodox views on this subject, as the subject was not clear to their minds; still more of them were shy and embarrassed.$

अतः स्पष्ट है कि भूमि के सम्बन्ध में जो परीक्षण सोवियट रूस ने किये थे वे सब प्रकार से फेल हुये।

(६) पूंजी के सम्बन्ध में वर्गवाद के परीक्षण

ये परीक्षण भी सफल नहीं हुये। इसके सम्बन्ध में दो बातों पर विचार करने से विषय पर अच्छा खासा प्रकाश पड़ेगा :—

(१) वर्गवाद चाहता है कि निज की सम्पत्ति किसी के पास न रहे परन्तु कहा जा चुका है कि कृषकों के सम्बन्ध में सम्पत्ति न रखने के नियम को सोवियट रूस को शिथिल कर देना पड़ा। इसलिये जहाँ तक रूस के कृषक-संसार का सम्बन्ध है पूंजी सम्बन्धी परीक्षण भी फेल हुये। नसे उनकी निजू संपत्ति पृथक नहीं की जा सकी।

(२) मज़दूरों के काम की मज़दूरी अब तक नहीं थी उन्हें भोजनादि के लिये कार्ड मिल जाते थे जिसके द्वारा वे नियत होटलों में भोजन कर लेते थे, उन्हें मकान भी रहने के लिये सोवियट की ओर से दिया जाता था, उनके बच्चों के भी पालन-पोषण और शिक्षा का भार राज्य ही के ज़िम्मे होता था परन्तु इतना होने पर भी मजदूर काम बहुत थोड़ा करते थे अधिक

$(Modern Reviw of January, 1931.)

समय उनका वर्गवाद के नारों (Slogans) के लगाने में ख़र्च होता था परन्तु जब पंच वर्षीय स्कीम की शुरुआत हुई तो मज़दूरों पर सख्ती हुई कि 'काम करो या भूखे रहो' इसका स्वाभाविक फल यह होना था कि उनमें असन्तोष हुआ। इस संघर्षण का अंत इस प्रकार हुआ कि भोजनादि देने की उपर्युक्त प्रणाली एक दम बन्द करके पुराने और दुनिया भर में प्रचलित तरीक़े पर रूस को लौटना पड़ा और नियम होगया कि काम करो और मज़दूरी लो, इसके सिवा एक का दूसरे से कुछ सम्बन्ध नहीं। वी० एम० मौलोटोव चेयरमैन ने अपनी वक्तृता में जो सोवियट राज्य की मुख्य प्रबन्धक सभा की दूसरी बैठक में दी गई थी। इस परिवर्तन का विस्तार के साथ वर्णन किया था। ❋इस प्रकार जब मज़दूर काम करके धन प्राप्त किया करेंगे तो वे अपनी पूँजी भी कुछ न कुछ बना सकेंगे।

❋Vide report of the speech by V. M. Molotove chairman of the council of people's commissars, to the second session of the central executive committee of the U. S. S. R. on the new policy indicating to return to a monetary system on the lines in use in other civilised countries and the development of the wage system, published in the monthly "Review" by the U. S. S. R. Trade Delegation in Great-Britan.

(Hindustan Times 23. 2. 1936.

इन उद्धरणों से यह बात साफतौर से प्रकट है कि जिन कृषकों ने अपनी भूमि सोवियट रूस को देदी थी, वे अंत में कृषक नहीं अपितु साधारण मज़दूरी वाले कुली रहगये। डाक्टर टागोर ने इस पर उपस्थि व्यक्तियों को सलाह दी थी कि दोनों के लिये इधर उधर के किनारों को छोड़ कर मध्य का मार्ग अपनाना अच्छा होगा अर्थात् लोग संपत्ति रखें परन्तु सीमा से अधिक नहीं और बाक़ी संपत्ति उपकार के कामों में खर्च होनी चाहिये।[1] प्रसन्नता है कि डाक्टर टागोर की सलाह बेकार नहीं गई। रूस ने उस पर कुछ वर्षों के बाद अमल किया।

(७) रूस ने प्राईवेट प्रापर्टी रखने के पत्त में नियम बना दिया

सोवियट रूस के राजनियम, जो इस समय (१९७५ ई० में) प्रचलित है, ये १९३७ ई० में प्रचलित किये गये थे। उस की एक धारा इस प्रकार है:— "समस्त निजी सम्पत्ति की रत्ता का, जो मज़दूरी आदि के द्वारा, एकत्र की जाती है। उत्तरदायित्व सोवियट राज्य लेता है। मज़दूरी लेकर काम करने का अधिकार प्रत्येक रूसवासी को है। इस के रत्ताकी भी जिम्मेदारी सोवियट गवर्नमेन्ट पर है जिस काम करने की पद्धति, समाजवाद के आर्थिक सुधार के नियमा-

(1) डाक्टर टागोर के शब्द ये थे:—That private property should be permitted to remain but that the limits of its' strictly individual enjoyment should be freed, any surplus beyond this limit should be available for public utilization.

(Modern Review January 1931)

नुसार निश्चित हुई है और जिस का करना प्रत्येक रूस के नागरिक के लिये अनिवार्य है काम की मज़दूरी काम की उपयोगितानुसार नियत होगी।"[1] यह नियम कि प्रत्येक रूस के रहने वाले को अन्न पैदा करने और उस को न संपत्ति के निजी तौर पर रखने को अधिकार है, साफ तौर से प्रकट कर रहा है कि कार्लमार्क्स की स्कीम कि किसी के पास निजी संपत्ति नहीं होनी चाहिये, सोवियट रूस के व्यवहारिक जीवन में अव्यवहार्य सिद्ध हुई। इसलिये वर्गवादियों को चाहिये कि अब आगे इस स्कीम को व्यवहार में लाने का ढोल न पीटा करें।

(८) एक और कठिनता

निजी संपत्ति न रखने के अर्थ यह हैं कि प्रत्येक व्यक्ति पूर्णतया समाज का बन्दी बने और अपने व्यक्तित्व को नष्ट कर डाले, जैसा कि मेजर औलिवर स्टैनली (Majar Oliver Stanly) इंगलैंण्ड के ट्रान्सपोर्ट के मिनिस्टर ने अक्टोबर १९३३ ई० में अपनी एक वक्तृता में, जो मानचेस्टर में दी गई थी, कहा

(1) अंग्रेजी के शब्द ये हैं:—All private property accuring as the result of earnings is guaranteed state protection. The right to work is also guaranteed as a result of the planned Soviatist economy and is made obligatory for every citizen, with wages to be adjusted according to the importance of the job.

(Hindustan Times)

था।[1] इसी बात को लीनन ने भी इस प्रकार कहा कि "समस्त समाज एक कार्यालय या एक फैक्टरी हो जावेगा।[2] ये और इस प्रकार की बातें करने में तो भली मालूम होती हैं परन्तु व्यवहार में आने से इन का कोई मूल्य नहीं रहता। लीनन के इस नियम को उस के उत्तराधिकारी स्टैलिन ने समाप्त कर दिया जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। समस्त रूस न तो एक कार्यालय बना और न ही एक फैक्टरी, किन्तु २१ राज्यों में विभक्त हो गया, जिस की घोषणा स्टैलिन ने इसी युद्ध के बीच १९४२ ई० में की थी।

(६) डाक्टर भगवादास और निज संपत्ति

डाक्टर भगवानदास ने एक जगह लिखा है कि मनुष्य की नैसर्गिक इच्छा तीन बातों के लिये हुआ करती है :—(१) आत्म रक्षा के लिये भोजन की इच्छा, (२) आत्म विस्तार के लिये निज संपति की इच्छा तथा (३) परिवार वृद्धि के लिये पत्नी की इच्छा। जब तक मनुष्य प्राकृतिक जगत् के पथ का पथिक रहता है तब तक शरीरस्थ आत्मा से, डाक्टर की सम्मति में, इन तीनों का सम्बन्ध रहा

(1) स्टैनली के शब्द ये हैं:—The communist solution seems simple but means the complete subordination of the individual to the state and the destruction of his personality.

(2) लीनन के कथन के अंग्रेजी शब्द ये हैं:—The whole of society will become one office and one factory (Humanity uprooted by M. Hundus P. 64).

करता है, इन्हें कोई दूर नहीं कर सकता।[1] डाक्टर का कहना यह भी है कि ये तीनों मौलिक इच्छायें, समस्त जातियों के साहित्य और समस्त मज़हवों में जो आज मौजूद हैं, स्वीकार की गई हैं।[2]

(१०) वैदिक दृष्टि-कोण

सांख्य दर्शन के आधार से यह बात कही जाती है कि यह जगत् प्रकृति से बना है। जगत् के बनने का क्रम प्रकृति के सूक्ष्म से स्थूल होने की ओर चलता है। पहले दरजे पर प्रकृति स्थूल होकर महत्त्व के रूप में परिवर्त्तित हुआ करती है। यहां तक प्रकृति और उसका विकार महत्त्व में समष्टि पन से रहा करता है। दूसरे दरजे पर महत्व स्थूल होकर अहंकार का रूप ग्रहण किया करता है। प्रकृति क्रमपूर्वक स्थूल होकर जब अहंकार के रूप में आ जाती है तब प्रकृति और उसके विकार का समष्टिपन, इस अहंकार वाले परिवर्तित रूप में बाकी नहीं रहा करता। अहंकार से व्यक्तित्व का क्रम आरम्भ हो जाता है। अहंकार पंच तन्मात्रा का रूप ग्रहण करके शब्द स्पर्श, रूप रस, गंध की शक्ल में आ जाता है। इन्हें सूक्ष्म भूत कहा जाता है। इन से १० इन्द्रिय और मन के रूप में प्रकृति आ जाती है। यहां सूक्ष्म भूतों का क्रम समाप्त हो जाता है इसके बाद इन सूक्ष्म भूतों के और अधिक स्थूल होने से आकाश वायु, अग्नि, जल और पृथिवी

1. Ancient V Modern Socialism by Dr Bhagawan Das P. 21.

2. The Essantial unity of all religions by Bhagawan Das P. 140—152.

स्थूल भूत बन कर उन से जगत् के सस्त पदार्थ बन जाया करते हैं। सांख्य कार के दिये इस विवरण से स्पष्ट है कि यह जगत् अहंकार की सृष्टि है और यह सृष्टि स्थित भी अहंकार ही से रहा करती है। माता अपने बच्चे की, साहूकार अपने संपति की और राजा अपने देश की रक्षा उसी हालत में किया करता है जब उस के साथ अपनेपन का नाता जोड़ लिया करता है। जब मैं कहता हूं (मैं—I) तो इसका अर्थ अहंता—मेरा व्यक्तित्व—मेरी Indivi duality हुआ करती है। इसी से ममता बनती है। जिस का अभिप्राय यह है कि मेरे भीतर इच्छा उत्पन्न हुई कि मेरे लिये एक पृथक् घर चाहिये, सुख पूर्वक उस घर में रहने के साधन तथा निज संपति भी चाहिये। जब तक मनुष्य सांसारिक भोग (अभ्युदय) की इच्छा रखता है उस के लिये उपर्युक्त वस्तुओं का होना अनिवार्य है। और जब वह वानप्रस्थ (Anchorite) या सन्यासी (Renunciant) हो कर अभ्युदय से हट कर निःश्रेयस अथवा लोकोन्नति से आगे बढ़ कर परलोकोन्नति की ओर चलता है तब वह इस ममता को छोड़ कर अपने और परमेश्वर के बीच वाले परदे—अहङ्कार को हटा दिया करता है। परन्तु जैसा कहा गया है जगत् में रहते हुए कोई ममता छोड़ कर निज संपति की इच्छा न करे अथवा उसकी आवश्यकता को अनुभव न करे यह असंभव है। अतः स्पष्ट है कि जो मनुष्य निज सम्पति के रखने के विरुद्ध जिहाद किया करते हैं मानो वे असम्भव को सम्भव करने की चेष्टा करते हैं। वेद के आधार से मनु की आश्रम-व्यवस्था प्रकट करती है कि इस देश के ऋषियों और मुनियों ने—

(१) असीमस्पर्धा (Unlimited competition) और बलात् सहयोग (Enforced cooperation)

(२) स्वार्थ—आत्मलाभ (Egoism) और समाजलाभ (Altruism devotion to Humanity)

(३) व्यक्तिवाद (Individualism) और समाजवाद (Socilism)

(४) पूरीस्वतंत्रता (All liberty) और पूरीपरतंत्रता (No liberty)

(५) केवल निज व्यवसाय (only private enter prige) और केवल राजप्रबंध (Only state Management)

(६) अणुकराज्य (Too little Govt) और अतिशय राज्य (Too much Govt) के मध्य बीच का रास्ता निकाल रक्खा था। और इसी मध्य पथ के वे पथिक थे—न वे सीमा की एक ओर और न सीमा की दूसरी ओर रहने के इच्छुक थे। ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम में अभ्युदय के मार्ग पर चलते हुए संसार में अधिक से अधिक लाभ उठाते थे। संतान भी पैदा करते थे, धन भी संग्रह करते थे, अपना राज्य भी रखते थे, राज्य की रक्षार्थ सेना भी रहती थी परन्तु आगे के अन्य दो आश्रमों (वानप्रस्थ और सन्यास) में वे समस्त सांसारिक अभ्युदय के साधनों का त्याग कर देते थे।

इस आश्रम व्यवस्था में लोक और परलोक सब का उपभोग आजाता है परन्तु मार्क्स ने इतिहास को केवल भौतिकवाद प्रतिपादक मानकर आत्मवाद और परलोक सब को नष्ट करने

की असंभव इच्छा की थी, परन्तु इसके लिये उसे अंत में पछताना ही पड़ा, जैसा कि कहा जाचुका है।

(११) गणीभूत क्षेत्र

यह तो संभव नहीं कि समस्त उत्पत्ति के साधनों का मालिक राज्य या समाज ही हो, जैसा ऊपर कहा जा चुका है परन्तु पैदावार अधिक हो सके इसके लिये बड़े बड़े गणीभूत क्षेत्रों (collective farms) की ज़रूरत होगी जैसे अमरीका में है और जिनका अनुकरण सोवियट रूस ने भी किया है। मिलें सब से अधिक माल अमरीका में पैदा करती हैं। १९१४ ई० में अमरीका के बनाये हुये माल का मूल्य २४ अरब २५ क्रोड़ डालर था परन्तु १९२७ ई० में पैदावार बढ़कर ६२ अरब ७० क्रोड़ डालर का हो गया। माल के तैयार करने में अमरीका इतने वेग के साथ आगे बढ़ रहा है कि एक वर्ष का अमरीका का पैदावार इंगलैंड, जरमनी, इटली और वेलजियम को मिलाकर इनके एक वर्ष के पैदावार से दुगना होता है। इसलिये स्वाभाविक है कि अब आगे दुनियां का एकाधिपति अमरीका होगा।[1] अमरीका चाहता है कि प्रत्येक मज़दूर पूँजीपति बन जावे, इसके विरूद्ध रूस चाहता है कि प्रत्येक पूंजीपति मज़दूर बन जावे। अमरीका में मज़दूरों की ज़रूरत न होने देने के लिये मशीनों का रिवाज़ बढ़ता जाता है। खेत में अनाज की बोरियां पहुंचा देना मज़दूरों का काम है। उसके बाद बोना, फ़स्ल काटना, अनाज निकालना, पीसना, और पीसकर डबल रोटी बना देना, ये सब काम मशीनों से होता है। इन कामों में आदमी को हाथ लगाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। रूस ने भी इसी

(1) The Modern Review 1930 P. 661.

प्रकार की मशीनें और मिलें रूस में लगानी शुरू कर दी हैं। पैदावार बढ़ाने के लिये मशीनों की उपयोगिता है परन्तु छोटे छोटे खेतों में मशीनें काम नहीं कर सकतीं। इसलिये यहां भी सहयोग की प्रक्रिया प्रचलित करके बड़े बड़े गणीभूत क्षेत्र तय्यार करने होंगें, जिन में मशीनों से काम लिया जावे। देश की बढ़ती हुई आबादी के लिये अन्न भी अधिक चाहिये और अन्न का पैदावार बढ़ाने के लिये मशीनों से काम लेना अनिवार्य सा ही प्रतीत हो रहा है।

(४) समाज श्रेणीरहित हो।

(१) समाज श्रेणीशून्य हो

मार्क्स की स्कीम का एक अंग यह भी है कि समाज श्रेणी रहित हो। परन्तु यह इच्छा असंभव है कि पूरी हो सके। जब तक प्रकृति के अंगों सत रज और तम में समता रहती है जगत् नहीं बनता प्रलय रहा करती है। इनमें विषमता आने ही से जगत् बना करता है। इसलिये विषमता तो प्राणियों के स्वभाव में सम्मिलित हैं। इसके दूर करने की इच्छा का अर्थ मनुष्य स्वभाव को बदलना है और यह संभव नहीं।

(२) समाज श्रेणीरहित नहीं हो सकता

रूस में वर्गवाद के परीक्षण हुये और परीक्षणों ने सिद्ध कर दिया कि समाज श्रेणीरहित नहीं बन सका। इस समय रूस में इतनी श्रेणियां हैं:—

(१) वर्गवादी जिन के नामांकित हैं और जिन में शासकवर्ग, समस्त राज्याधिकारी और लाल फ़ौज के आदमी शामिल हैं।

(२) मज़दूर वर्ग जिनमें दोनों प्रकार के मज़दूर इंजीनियर

आदि तथा शारीरिक परिश्रम करने वाले, शामिल हैं।

(३) कृषकों के ४ वर्ग जिनका इससे पहले उल्लेख हो चुका है।

(४) व्यापारियों के अनेक वर्ग।

इनके लिये यह नहीं कहा जा सकता कि इन्होंने पारिवारिक जीवन, संपत्ति की इच्छा अथवा धार्मिक नियमों का पालन करना छोड़ दिया है। उपर्युक्त नियमों के पालन करने के रूप अवश्य बदल गए हैं। यदि आबादी पर दृष्टि डाली जावे तो जो वर्गवादी हैं और प्राय: शहरों में रहते हैं, उनकी जन संख्या केवल तीन मिलियन अर्थात् ३० लाख है। यह संख्या रूस की जन संख्या—ग्यारह क्रोड़ ६० लाख का केवल ५० वां भाग अथवा दो फ़ीसदी है। इनके सिवा वे मज़दूर जिन्हों ने सोवियट के वर्गवादी नियमों को, कम से कम मौखिक रीति से मान लिया है उनकी जन संख्या २७ मिलियन या एक क्रोड़ सत्तर लाख अर्थात् कुल जन संख्या का लगभग $\frac{1}{10}$ भाग है। इसको छोड़ कर बाक़ी आबादी अवर्गवादियों की ही है। राज्याधिकार प्राप्त होने पर भी समस्त रूस वर्गवादी नहीं बन सका जब कि वर्गवादी बनाने के लिये नागरिकों पर अनेक अत्याचार किये गये, जिनका थोड़ा सा विवरण इस प्रकार है:—

(१) १९३३ ई० तक सोवियट के शासकों ने, अपने सिद्धांतों के न स्वीकार करने के कारण निम्न संख्या में स्त्री पुरुषों का बध करा डाला था:—

३१ लार्ड विशप, १५६० पादरी, २४५८५ वकील और मजिस्ट्रेट ७९६९७ १ जज तथा अन्य कानूनी अफ़सर, १६३६७ अध्यापक और विद्यार्थी, ९५८९० अमीर और धनवान व्यक्ति,

५६३४० सिविल और मलेट्री आफीसर, २ लाख मजदूर, ३ लाख, राजनैतिक कार्यकर्ता, ६ लाख किसान। इनके सिवा बहुत से लोगों को दण्ड देकर साईबेरिया भेज दिया गया, $2\frac{1}{2}$ लाख रूस छोड़कर बाहर चले गये। ५००० गिरजा घर गिरा दिये गये।[1]

(२) ५ दिसम्बर १६३४ ई०, सोवियट रूस ने, अपनी सरकार के ६६ अफसरों को मत भेद रखने के कारण एक साथ फांसी के तख्ते पर लटकवा दिया।[2]

(३) आर्थिकविषमता

न केवल श्रेणी की विषमता रूस में है अपितु आर्थिक विषमता का भी वहां पर्याप्त दौरा है। जो वर्गवादी और प्रोलेटैरियन्स (वर्गवादी मजदूर) हैं उनके वेतनों में भारी अन्तर है। कुछ एक को केवल ४५ रोबिल मासिक और कुछ एक को १५००) रोबिल मासिक और अन्यों को इनके बीच की संख्या में मासिक वेतन मिलता है। इस समय भी ग्रन्थ लेखक और नाटक के रचयिता रूस के अधिक से अधिक धनवानों में गिने जाते हैं[3] अस्तु; जब वेतनों में इतना अन्तर है फिर कोई कैसे कह सकता है कि सोवियट रूस में आर्थिक विषमता नहीं। आर्थिक विषमता होने पर किस प्रकार कोई उसे श्रेणीरहित समाज कह सकता हैं? उपर्युक्त घटनाओं पर दृष्टिपात करने के बाद किसी को भी इस परिणाम पर पहुंचने में कठिनता नहीं हो सकती कि मार्क्स का श्रेणीरहित समाज बनाने का विचार सर्वथा अव्यवहार्य सिद्ध होता है।

(1) Reformer Lahore Dated 11-3-1934.
(2) Modern Review January 1935 P. 133.
(3) Twelve studies in Russia P. 70—271.

छठा अध्याय

(५) राज्य पर अधिकार करना आवश्यक है।

(१) राज्याधिकार

प्राय: वर्गवादियों का यह सिद्धांत रहा है कि समाज के पुनर्निमाण के लिये राज्यबल अनिवार्य है। इस लिये उस बल के प्राप्ति के लिये सभी प्रकार के कार्यों का करना जिनमें क्रान्ति भी शामिल है, आवश्यक है बैक्यूनि (Bakunin) को प्रत्येक प्रकार के शासन से, चाहे वह चर्च का हो, राज्य का अथवा विज्ञान का, घृणा थी। इसी लिये उसे क्रान्ति में विश्वास था। वह चाहता था कि दलित श्रेणी के लोग क्रान्ति करें परन्तु उन के अगुआ कुछ एक ऐसे अविदित और क्रूर वीर व्यक्ति हों जो क्रान्ति का मूल्य समझते हों। उसकी दृष्टि में राज्य अतिनिंद्य, कुटिलता पूर्ण और एक ऐसी संस्था है जो मनुष्यत्व को नष्ट करना चाहती है, इसलिये कि उसकी बागडोर निकृष्टतम व्यक्तियों के हाथ में होती है। इसलिये जब तक वह (राज्य) नष्ट न किया जा सके तब तक उसका बहिष्कार तो अवश्य करना ही चाहिये।[1]

---

(1) A. History of socialism by Sally Graves P. 69 & 70.

बैक्यूनिन एक वर्गवादी था जो साइबेरिया से भाग कर राज्य के विरुद्ध कार्य करने में लगा हुआ था। इस का कार्य क्षेत्र रूस स्पेन और इटली था।

फ्रांस में, जर्मन से हार जाने के बाद, वर्गवाद कुचल दिया गया था। मार्क्स ने इस (वर्गवाद की) असफलता से दो (२) आवश्यक पाठ सीखें :—(१) मजदूरों को, जब वे राज्य सत्ता पर अधिकार प्राप्त कर लें तो चाहिये कि समस्त राज्य के अन्तर्गत अपने क़ानून प्रचलित कर दें जिससे उनका राज्य दृढ़ हो जावे। (२) सफल क्रान्ति के लिये बड़े बड़े नगरों ही की नहीं बल्कि छोटे २ नगरों और ग्रामों की भी सहायता अपेक्षित है।[1] अस्तु; फ्रांस की उपर्युक्त हार के और भी, बहुत दूर तक प्रभाव डालने वाले, परिणाम निकले। फ्रांस के वर्गवाद का तो खात्मा हुआ ही था कि जर्मन में भी वर्गवादियों के दो नेता वेबल (Babal) और लीवनेच (LiebKnecht) जेल में डाल दिये गये। इन का अपराध यह था कि जर्मनों ने फ्रांस के प्रान्त ऐलस लोरैन (Alsace-Lorraine) को फ्रांस की हार के बाद अपने देश में शामिल कर लिया था, इस संबन्ध में इन नेताओं ने प्रोटेस्ट किया था। इंगलैंड पर इस युद्ध का प्रभाव यह पड़ा कि उस देश का व्यापार बहुत बढ़ गया और कारखानों की अच्छी खासी उन्नति हुई। इसका फल यह हुआ कि श्रमजीवियों की मजदूरी में अच्छी खासी वृद्धि हुई। फल स्वरूप वहां के मज़दूरों ने क्रान्ति का विचार छोड़ दिया और वे भविष्य में बहुत अहतियात से काम करने लगे। इस से वहां के व्यापार संघों की भी अच्छी खासी उन्नति हुई। इस से इंगलैंड में मार्क्स का मान बढ़ने लगा। संक्षिप्त रीति से इस का विवरण इस प्रकार है :—

---

(1) History of Socialism P. 71 & 72.

चार्टरवाद की असफलता के २० वर्ष बाद लिबरल पार्टी का प्रभाव इंगलैंड में बढ़ा, उनके विचार करने के प्रकार और उन के आर्थिक समस्या से संबंधित विचारों को, वहां के निवासियों ने अपनाया।

इंगलैण्ड और मार्क्सवाद

व्यापार संघों को भी व्यापार स्वातन्त्र्य से लाभ पहुँचा। ग्लेडस्टोन को अपनी राजनैतिक शक्ति का पूरा ज्ञान था। उसने शान्ति और वैधानिक साधनों से इस से काम लिया। व्यापार संघ उसके समर्थक थे औडगर (Odgar) और क्रेमर (Cremer) ने मज़दूर संघों को लिबरल पार्टी से पृथक् करने का कभी विचार भी नहीं किया। १८५१ ई० में इंजीनियरों, मिल के उच्च कर्मचारियों लुहार और नमूना बनाने वालों ने मिलकर एक संगठन बनाया जिसका नाम उन्होंने इंजीनियरों का सम्मिलित संघ (Amalgamated Society of Engineers) रक्खा। यह संघ पूंजीपतियों के लिये एक प्रकार का चैलेंज था। १८५२ ई० में जब इस संघ के सदस्यों को पकड़ा गया तो ईसाई संघों ने भी इस संघ का समर्थन किया। इससे इस संघ का प्रभाव और बढ़ गया। इस संघ का उद्देश्य श्रमनियन्त्रण था। १८७१ई० में "व्यापार संघ आईन" के पास होने से इस संघ की राह में जो रुकावटें थीं वे अधिकतर दूर हो गईं। इस बीच में व्यापार स्वातंत्र्य के नियम को लोगों ने संदेह की दृष्टि से देखना शुरू किया। इसके विरुद्ध एक स्कूल बना। रसकिन और किंग्सले ने इस स्कूल की ओर से अनेक लेख लिखे। अमरीका और जर्मन ने इस व्यापार स्वातंत्र के नियम से लाभ उठा कर व्यापार में इंगलैंड से स्पर्धा की। फल उसका इंगलैंड के लिये ख़तरनाक हुआ। इन हालात में कुछ एक

मजदूर संघ लिबरल पार्टी से पृथक हो गये। इसी बीच में एक स्कूल बना जिसने भूमि जातीय संपत्ति बनाने का सुधार चाहा। जान स्टुआर्ट मिल की, इसी उद्देश्य से बनाई एक संस्था में जान मौरले, जार्ज उडगर (George Adgar) सर चारलिस डिल्की (Sir Charles Dilke) और रैंडल क्रेमर (Randall Cremer) जैसे प्रभावशाली व्यक्ति भी शामिल हो गये। जो लोग इस भूमि सुधार के पक्ष में थे। उन्होंने चाहा कि समाजवाद के अन्य नियमों को भी स्वीकार करें और सोशल डिमौक्रेटिक फैडेशन (Social Democratic federation) में भी शामिल हो जावें। यह फैडेशन इससे पहले हेनरी हिन्दमैन (Hanry Hyndman) द्वारा स्थापित डिमौक्रेटिक फैडेशन का बचा कुचा भाग था। और भी इस प्रकार की छोटी मोटी संस्थायें इंगलैंड में बनती रहीं परन्तु उनका कुछ महत्त्व नहीं था। यह सोशल डिमौक्रेटिक संघ भी कोई बड़ा महत्त्वपूर्ण संघ नहीं बन सका। इसका रूप अन्त में यह हो गया कि इसे "अफ़सरोत्पादक संघ"(Officer Producing Unit) समझा जाने लगा जो नवीन यूनियनिज़्म (New unionism) अथवा स्वतंत्र लेबर पार्टी के पक्ष को समर्थन करने वाले होते थे। इन हालात में लोगों का ध्यान मार्क्स की ओर गया और उसके लेख पढ़े जाने लगे। देशी व्यापारसंघ (The Native trade union movement) की तहरीक १८८० ई० में हुई, डाक्टर हड़ताल से प्रभावशाली होने लगी। इस तहरीक को हार्बर्ट स्पेन्सर और अरनौल्ड टौइनबी (Arnold Toynbee) के स्थापित समाजवाद के नवीन ऐतिहासिक स्कूल (The New "Historical"

School of Socialogy) से अच्छी सी पुष्टि मिली। इस स्कूल ने पूरा यत्न किया कि समष्टिवाद को क्रमशः आइन बनवाने में पूरी पूरी सहायता दे। इस स्कूल में प्रोपेगेण्डा करने वाले मुख्यतया सिडनी वेव (Sydney Wabb) वरना-डंशा (Bernard Shaw) और सिडनी औलिवर (Sydney Oliver) थे। इस बीच में हुई दक्षिण अफ्रीका क लड़ाई ने लिवरल पार्टी की कमर तोड़ दी और यहीं से वर्तमान लेवर पार्टी का जन्म हुआ समझा जाता है। इस समय की मुख्यतया दो बातें हैं जिनका सम्बन्ध लेवर पार्टी के उत्थान से है:-

(१) फैवियन सोसायटी का लेवर पार्टी पर प्रभाव।

(२) तथा लिवरल और लेवर पार्टी का पारस्परिक सम्बन्ध; १६०६ ई० के बाद जिसके परिणाम स्वरूप एक रणोद्यत सम्प्रदाय बन गया।

फैवियन सोसायटी और मार्क्स

इस फैवियन सोसायटी ने अपने प्रकाशित फैवियन पुस्तकों द्वारा मार्क्स की आलोचना करते हुए प्रकट किया है:—सिडनी वेव का कथन है कि "मार्क्स अपने समय के लिए उपयोगी व्यक्ति था और उसने अपने समय की अवस्थायें आश्चर्य जनक स्पष्टता के साथ वर्णन की थीं परन्तु १८६५ और १८८५ ई० के मध्य इंगलैंड का परिवर्तन युग था—इस परिवर्तन का मुख्य कारण व्यापार संघों का संगठन हुआ जिसके द्वारा मजदूर श्रेणियों की सत्ता को राज्य ने असंदिग्ध रीति से स्वीकार किया। १८६७ ई० के बाद ग्रेट बृटेन प्रजातन्त्र शासन के रूप में परिवर्तित हो गया। ऐसा हो जाने पर श्रमजीवियों को अवसर मिल गया कि आईन बनाने वाले संघ पर साक्षात रीति से

अपना प्रभाव डाल सकें। साथ ही राज्य ने भी स्वयमेव अपनी मनोवृत्ति को बदला और अब वह संघ केवल पूँजीपतियों का संघ नहीं रह गया था। उस की प्रवृत्ति सामाजिक सुधार की ओर भी हो चली थी। नयी परिस्थिति का तक़ाज़ा था कि नवीन राजनीति के तरीके काम में लाए जावें। और उसका फल लेवर गवर्नमेंट का बन जाना हो सकता है। जिस प्रजातन्त्र शासन के नियम न केवल पार्लियामेंट के काम आवें किन्तु उनका प्रयोग कला-कौशलीय कारखानों में भी हो सके।

इंगलैंड में मार्क्सवाद क्यों असफल हुआ?

मार्क्स का श्रेणी संघर्षण वाद उसके भृत्यातिरिक्त वाद से निकला हुआ समझना तर्क सिद्ध था। इसी प्रकार वेब का सामाजिक विकासवाद उसके राजस्ववाद का का एक दूसरा रूप था, यह राजस्ववाद "मिल" के भूमि सुधार वाद से उत्पन्न माना जाता था। अस्तु इन परिवर्तनों से इंगलैंड के श्रमजीवियों पर निम्न प्रभाव पड़े:—

(१) राज्य पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उस प्रकार की क्रांति की ज़रूरत नहीं, जिसका मार्क्स ने अपने लेखों में संकेत किया है।

(२) उस प्रकार के श्रेणी संघर्षण भी अनावश्यक हैं जिन का मार्क्स पक्षपाती था।

(३) निज संपति न रखने पर भी बल देने की ज़रूरत नहीं क्योंकि उसके बिना किसी का भी काम नहीं चल सकता था।

(४) इन और इसी प्रकार के अन्य कारणों से मार्क्सवाद की अपेक्षा इंगलैंड की मजदूरों की दृष्टि में उनके देश में प्रचलित प्रजातन्त्र शासनवाद अधिक उपयोगी, अधिक शांतिप्रद और देश

वासियों में समन्वय रखने का अधिक साधक हो सकता है। इसलिए उनमें मार्क्सवाद के लिए वह श्रद्धा नहीं रही जो इस समय उन्हें अपने प्रजातन्त्र शासनवाद में है।

(५) मजदूरी में समता का भाव भी इंगलैंड में उन्नति नहीं कर सका, उनकी दृष्टि में विषमता का रहना अनिवार्य है। अधिक कुशल मजदूरों के लिए आवश्यक है कि उनको अधिक मज़दूरी मिलने के सिवा योग्यता की मज़दूरी (Rent of ability) भी मिले।

(६) इंगलैंड में इसीलिए राजनैतिक शक्ति प्राप्ति का संघर्षण मजदूरों और पूँजीपतियों में नहीं रहा, अपितु बहुपक्षप्राप्ति के संघर्षण रूप में परिवर्तित हो गया।

(७) जो शारीरिक परिश्रम करते हैं और जो मानसिक परिश्रम करके नये नये वैज्ञानिक आविष्कार करते हैं और जो खोजों के कार्यों में लगे रहते हैं और जो कला तथा राज्य का संगठन करते हैं इन सब में इनकी योग्यतानुसार ही उपज का विभाजन होना चाहिए। राज्य का कर्तव्य है कि उपज का कुछ अंश जनता के लाभार्थ कर के रूप में लेवे, और कुछ नगर पालिका (Municipality) के कार्यों के लिए और कुछ जातीय संपति बनाने के लिए लेवे। शेष को उपर्युक्त भांति विभाजित कर देवें।

(८) मार्क्सवाद की अपेक्षा फैबियनवाद की विशेषता बृटिश लेबर पार्टी के दृष्टि से यह थी कि इस दूसरे वाद के समस्त कार्य बैधानिक ढंग से चलते हैं और वे सब देश के प्रचलित संगठन द्वारा काम में आते और आ सकते हैं। इसके अतिरिक्त इसी के बदौलत मध्यम श्रेणी की जनता का प्रवेश लेबर पार्टी में हुआ और लेबर पार्टी इस प्रकार शक्तिशालिनी संस्था बन गई।

(६) जो सुधार लिबरल पार्टी के नेताओं लौइड जार्ज आदि ने किये वे सब भी इसी फैबियन सोसायटी के नियमों के आधार से किए गए थे और इसी के आधार पर बुढ़ापे के पेन्शिन (Old Age Pension Act 1908) खानोंके काम करने वाले मजदूरों के लिए ८ घण्टे काम का क़ानून (Minors Eight hours 1908) कोयले का क़ानून (Coal Mines act) आदि अनेक सुधार के आईन बने जिन से मजदूरों का बड़ा उपकार हुआ ।

——:o:——

सातवां अध्याय

"मार्क्स के शेष सिद्धान्त"

मार्क्स की सात बातों में से दो शेष रहती हैं उन पर इस अध्याय में विचार किया जायगा।

उन दो में से एक के द्वारा मार्क्स ने चाहा है कि सभी नगर निवासी सम्मति देने के अधिकारी माने जावें अर्थात् समस्त देशवासियों को राज्य संस्था के चुनाव आदि में सम्मति देने का अधिकार होना चहिये। सिद्धांत के रूप में तो इसे प्रायः सभी मानते हैं। परन्तु इसे क्रियात्मक रूप देने में कुछ कठिनताएँ हो सकती हैं। स्वीजरलैंड जो शायद अंबाला डिवीज़न से कुछ छोटा ही होगा, वहां प्रत्येक व्यक्ति को समत्याधिकार है। बड़ी बड़ी आबादी के देशों में जैसे चीन और हिन्दुस्तान अवश्य कठिनता पड़ेगी परन्तु सिद्धान्त रूप में यह सिद्धान्त सर्वसम्मत है। इसलिए इस पर अधिक विचार करने की ज़रूरत नहीं।

सार्वत्रिक सम्मत्यधिकार

मज़दूरों की आर्थिक अवस्था ठीक होनी चाहिये।

मार्क्स ने इस विषय पर विचार करते हुए इस सुधार के प्रसंग में भृत्यातिरिक्त वाद की चर्चा की है। इस वाद का अभिप्राय यह है कि उपज में मज़दूरी देने के बाद जो बाक़ी रहता है उसे

भृत्यातिरिक्तवाद या Theory of Surpplus Value कहा जाता है। मार्क्स का अभिप्राय इस वाद के यहां प्रकट करने से यह है कि यह चाहता है कि इस प्रकार जो बचे, वह कृषक या मज़दूर को मिलना चाहिए, मिल या भूमि मालिक जो उसे हड़प कर लेते हैं, वे कृषकों या मज़दूरों के साथ अन्याय करके उनका हक़ छीन लेते हैं। मार्क्स की दृष्टि में जो उपज भूमि या मिलों से होती है उस का एक मात्र कारण मज़दूरों का परिश्रम या उन की मज़दूरी है। उस ने इस बात के विचारने की तक़लीफ नहीं उठाई कि मालिक के पास भूमि कहां से, उसमें उस का कुछ धन लगा है या नहीं, यदि लगा है तो क्यों न उस धन के व्याज के रूप में वह धन उसे मिलना चाहिए, जिसे भृत्यातिरिक्त धन कहा जाता है। यदि कोई मिल है तो उसकी मशीनों का मूल्य उसके लिये इमारत बनवाना और फिर उस इमारत में उसे फ़िट कराना तथा दैनिक कृत्य के लिये कोयला तेल पानी आदि का व्यय इत्यादि ये सब काम क्या बिना पूंजी लगाये हो गये ? यदि नहीं तो क्यों न मिल मालिक को वह धन जो मज़दूरी से बचा है, मिलना चाहिये। इस प्रकार विचार करने से पता चलेगा कि भृत्यातिरिक्तवाद वाकछल मात्र है। उस का मूल्य कुछ नहीं। इसका अभिप्राय यह नहीं कि मज़दूरों को काफ़ी मज़दूरी नहीं मिलनी चाहिये। मज़दूरी अवश्य इतनी होनी चाहिये जिससे वे एक सभ्य नागरिक का सा जीवन व्यतीत कर सकें जैसा कि कहा जा चुका है।

*

आठवां अध्याय

अन्तर्जातीय वर्गवाद

यह ऊपर कहा जा चुका है कि इंगलैण्ड में वर्गवाद इस बुरी तरह से फेल हुआ है कि वहां निकट भिवष्य क्या दूर भविष्य में भी उस के पनपने की आशा नहीं रही। फ्रांस, इटली और जर्मन तथा आस्टरिया में वर्गवादी अल्पपक्ष के हैं। जापान टरकी और अमरीका में उनका स्तित्व नहीं के बराबर है। रूस का हाल एक पृथक् अध्याय में दिया जायगा। १६२४ ई० में यौरूपीय महायुद्ध के उपस्थित होने पर वर्गवादियों के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि निम्नस्थ तीन सूरतों में से कौन सी सूरत अख्तियार करनी चाहिए :—

(१) मूलतत्ववाद (Fundamentalism) अर्थात मार्क्स की शिक्षानुसार वर्गवाद को उसी के अनुकूल काम करते रहने देना चाहिये और उसी शिक्षा पर अक्षरशः अमल करना चाहिये।

(२) मनःसृष्टवाद (Utopeanism) अथवा उसे केवल वाद रूप में मानते रहना चाहिये, क्रियात्मक रूप चाहे दिया जा सके या नहीं।

(३) पुनर्दृष्टिवाद (Revisionism)

अन्तर्जातीय वर्गवाद की 'द्वितीय बैठक में, जो १८८६ ई० में हुई थी मार्क्स को सिद्धांत के रूप में उससे पहले अपनाया गया

था, परन्तु अब उसके अनुसार काम होना बन्द हो चुका था। इसी लिये इन वर्गवादियों के संमुख यह प्रश्न उपस्थित हुआ था कि उपर्युक्त तीन सूरतों में किसे अपनाना चाहिए। इस विचार विनमय का फल यह निकला कि वर्गवादियों के अधिकांश समुदाय ने यह स्वीकार किया कि राज्य पूंजीपतियों का है, उस के भीतर रहते हुए मजदूरों की अवस्था में जितना सुधार हो सकता है, करना चाहिए।"[1]

वर्गवाद समय के प्रतिकूल है।

उपर्युक्त निश्चय कर लेने के बाद यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इस निश्चय की संगति "मार्क्सवाद" के साथ किस प्रकार लग सकती है क्योंकि मार्क्स की शिक्षा यह थी कि साधनोत्पत्ति के स्वामित्व के निर्णय का राज्य पक्षपातरहित पंच नहीं हो सकता क्योंकि वह एक श्रेणी के वृद्धि का पक्षपाती है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह समय समय पर श्रम जीवियों पर अत्यचार करता रहता है, और राज्य नायकों का पक्ष लेता रहता है। इस प्रश्न पर विचार करने के बाद वर्गवादियों को यह स्वीकार करने के लिये वाधित होना पड़ा कि मार्क्स का मानस-शास्त्र (Ideology) समय के प्रतिकूल है। इस लिए यत्न करना

(1) अंगरेजी के शब्द इस प्रकार हैं:— 'Most of the parties within it (The Second International) accepted the existance of the ' Bourgeois" state & directed their energies forword, the improvement of the position of the working class inside its from work. (A. History of Socialism P. 114).

चाहिये कि श्रमजीवियों के लिये उपयोगी सुधार कराये जावें। इस निश्चय के परिणाम स्वरूप निम्न बातों को वर्गवादियों को अपनाना पड़ा :—(१) मध्यम श्रेणी के प्रगतिशील व्यक्तियों का सहयोग (२) साधनोत्पति के मालिकों को राज्य चलाने के लिये, उन के मन्त्री मण्डल में शरीक होकर सहयोग देना, (३) क्रान्तिकारी समस्त साधनों से पृथक् रहना।

वर्गवाद का आगामि कार्यक्रम

स्पष्ट है कि वर्गवादियों ने अपने सिद्धान्तों पर पुनर्दृष्टि डालने के वाद को अपनाया और आगे के लिये अपना आर्यक्रम इस प्रकार से बनाया कि राज्य पर विश्वास करना चाहिये क्योंकि यह आशा हो सकती है कि वह (राज्य) सुधारवादी हो जावे। व्यापार संघों और सहोद्योगी संघों पर भी श्रद्धा रखते हुये, उन से सहकारिता रखनी चाहिये। इस साहकारिता से राज्य में मजदूरों के लिये सुधार होने में सहायता प्राप्त होगी। अस्तु जो स्थिति अब वर्गवाद ने अपनी बनाई, यह ठीक वही है जिसे जरमन देश में "ऐडवर्ड वर्नस्टीन (Edward Bernstien) और उनके अनुयाइयों ने अपना रखी थी, अथवा फ़ौवियन सुसाइटी जिस की शिक्षा दिया करती थी" और जिसका ब्रिटिश के व्यापार संघों पर पूरा पूरा प्रभाव था और जिस की बात पहले कही जा चुकी है।

भूलतत्त्ववादियों का कार्यक्षेत्र

ऊपर की पंक्तियों से यह बात साफ़ प्रकट हो जाती है कि यौरुप के पश्चिमी भाग इंगलैंड आदि में पुनर्दृष्टिवादियों का प्रभाव था और इसी लिये उन्हों ने वर्गवाद में अपने देश की ज़रूरत के मुताबिक़ उलट फेर करके

अपने काम के योग्य बनाकर, उसके अनुसार काम करना शुरू कर दिया था—मूलतत्ववादियों का प्रभाव केवल रूस में था, जिस की बात आगे कही जायगी। अवश्य एक बार १८६६ और ७० के मध्य जरमन देश में भी बिलहेम लीवनेच (Wilhelm Liebknecht) एक जरमन सोशल डिमोक्रेट ने मूलतत्व-वाद के ढंग का क्रांतिकारी कार्यक्रम वहां के जरमन विरोधी लिवरलों से मेल करके विस्मार्क की "जनकर गवर्नमैंट के विरुद्ध बनाया था परन्तु वह कार्य क्रम अस्थाई था और शायद इसी लिये सफल नहीं हो सका। पश्चिमी यौरुप में इस की असफता का एक कारण यह भी था कि इस ओर के कृषक क्रांतकारी मनोवृत्ति के नहीं थे और दूसरा कारण यह कि राज्य की ओर से उन्हें सुधार की आशा थी और उन सुधारों का सूत्र पात हो भी चुका था।

नवां अध्याय

इस बैठक के निश्चय का प्रतिकार्य यह हुआ कि लीनन ने समझा कि इस बैठक ने विश्वासघात किया है जो राज्य के पूंजीपतियों की वस्तु स्वीकार कर लिया है। उसने इन सहयोगकामियों को अतिशय वर्ग-वादभक्त (Social Chauvinists) कहकर उन पर प्रेस द्वारा आक्रमण करके, अपने हृदय के मैल को धोना प्रारंभ कर रक्खा था। इसमें ज़रा भी शक नहीं कि लीनन के साथ इस बैठक में धोखा देने का व्यवहार वर्गवादियों ने किया था—उसने अपना सिद्धांत इस संघर्षण से, यह बनालिया कि साधनोत्पत्ति के मालिकों ने, उनमें से भी विशेष कर ऐसे देशों के मालिकों ने जो राज्यसत्ता भिमानी थे, अपने मुनाफे का एक भाग शिक्षित मज़दूरों को अधिक मजदूरी के रूप में देकर, इन्हें अन्य श्रम जीवियों से पृथक् करके, उनका एक पृथक् समूह बना दिया। जिसे शिष्टजनसत्तात्मक समुदाय (Aristocracy of labour) कह सकते हैं। वह समुदाय पूंजीपतियों की सदैव वृद्धि का इच्छुक रहा करता था। इस समूह का प्रजातंत्र-वादी वर्गवादियों, और व्यापार संस्थाओं पर अधिकार था। दूसरी अन्तर्जातीय संघ की असफलता का कारण भी वही समूह था।

अन्तर्जातीयसंघ की दूसरी बैठक और लीनन

असली क्रान्तिकारी श्रेणी उन मजदूरों में मिलेगी जो अपर्याप्त मजदूरी पाते हैं। इस लिये "खालिस युद्धप्रिय वर्गवादियों को सहायता के लिये तय्यार करना चाहिये।[1] लीनन के ये विचार साफ़ प्रकट करते हैं कि उसका उद्देश्य क्रान्ति और केवल क्रान्ति था। उसका यह उद्देश्य नहीं था कि मजदूरों को काफ़ी मजदूरी मिल जाय। उसका यह उद्देश्य ऐसे देशों में पूरा नहीं हो सकता था जो कलाकौशल को क्रियात्मक रूप देने में निपुण थे। उसकी यह इच्छा भी इन देशों में पूरी नहीं हो सकी कि इस राजाओं की लड़ाई (१९१४-१८ तक के युद्ध) को घरेलू युद्ध के रूप में परिवर्तित कर दिया जावे। लीनन के इन विचारों से पता चलता है कि उसे केवल श्रम की उपयोगिता स्वीकार थी धन की नहीं। और काम उसका भी धन के बिना नहीं चलता था। इस संघर्षण का फल मध्य यौरुप, पश्चिमी यौरुप, और नये बाल्टिक राज्य आदि में यह हुआ कि प्रत्येक स्थान में जातीय भावनाओं की अपेक्षा से वर्गवाद की हार हुई।

अन्तर्जातीयसंघ की तीसरी बैठक

यह बैठक १९२१ ई० में लिघोर्न (Leghorn) नामक स्थान में संघठित हुई थी। इस बैठक में फिर क्रान्ति के पक्ष में निश्चय हुआ। इस निश्चय से असन्तोष बढा। सेराटी (Serrati) मासको से बाहर था। वह बहुत क्रोध से भरा हुआ मासको लौटा। वह इस बैठक की क्रान्तिकारी तजबीज़ के सर्वथा विरुद्ध था। उसने साफ कह दिया कि इस निश्चय का परिणाम यह होगा कि व्यापार सघों का

1. A History of Socilism P. 120

बहुपक्ष या तो इस अन्तर्जातीय संघ से पृथक हो जायगा या यह पार्टी समाप्त ही हो जावेगी। जब इस क्रान्तिकारी संघ ने इस ओर ध्यान दिलाने पर भी अपने क्रान्किारी प्रोग्राम के छोड़ने की इच्छा प्रकट नहीं की तो, वर्गवादियों का एक बड़ा समुदाय असन्तुष्ट होकर वहां से चला गया। फल इसका यह निकला कि संघ का अवशिष्ट भाग क्रान्ति के सिद्धांत को स्वीकार करते हुये जीनन के साथ हो गया।

यह बात कही जा चुकी है कि फ्रांस में वर्गवाद समाप्त कर दिया गया था। उसका कारण फ्रांस का जरमन से हार जाना हुआ था। इसके बाद वारवेरिट (Brberit) ने यत्न किया कि एक "सिन्डीकल वाद" (Syndical moveemnt) प्रचलित किया जावे जो अंत में माल उत्पन्न करने वालों का एक "सहयोगवाद" बनजावे। वह इसलिये नहीं कि उसके द्वारा पूंजीपतियों के नाश का काम जारी किया जावे बल्कि केवल इसलिये कि पूंजी में समता हो जावे। यह वाद फ्रांस में फैला और १८७५ ई० में केवल एक पैरिस नगर में १३५ सिन्डीकेट (समिति) बन गये। १८७६ ई० में इन समितियों के प्रतिनिधियों ने एक श्रमसंघ (Lobour Congress) संगठित की। इसमें केवल उन समितियों के प्रतिनिधि ही शरीक हुये, जिनमें पारस्परिक सहायता और सहयोग की भावना जागृत हो चुकी थी। इस संघ ने अपना उद्देश्य यह घोषित किया कि उनके प्रतिनिधि राज्य परिषद में लिये जावें। परन्तु १८७९ ई० में इस संघ का नाम वर्गवादी संघ रखा गया और

फ्रांस और वर्गवाद

इसका उद्देश्य यह प्रकट किया गया कि उपज के साधनों का मालिक संघ हो और इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये उन्होंने एक राजनैतिक श्रमसंघ बनाया। इस संघ से वे लोग पृथक् हो गये जो राज्य से झगड़ा करने के हक़ में नहीं थे। परन्तु इस संघ का प्रभाव फ्रांस की राज नीति पर पड़ा। १८७६ ई० में "फ्रेंच रिपबलिक" (फ्रेंच राज्य परिषद्) ऐसा बना जिसमें मज़दूर श्रेणी, बिना विरोधियों के सहायता के, अपना प्रभाव डाल सकी।

गेसड़े का फ्रांस में प्रभाव

१८७३ ई० में जब प्रथम वार अन्तर्जातीय संघ पैरिस में संगठित हुआ था तो उसके प्रभाव से प्रभावित कुछ एक वर्गवादी बचे और छिपे हुये चले आरहे थे। १८७७ ई० में जब उन्हें एक राजनैतिक नेता "गेसड़े" (Jules Guesde) के रूप में मिल गया तो उन्होंने गेसड़े के मत का इगैलिटि (Egalite) नामक पत्र द्वारा प्रचार प्रारंभ कर दिया। अब उपर्युक्त राजनैतिक श्रमसंघ गेसड़े के प्रभाव में आगया। अब इस संघ के लोग अपने को संग्राहक (Collectorist) कहा करते थे। १८८२ ई० में यह संघ दो पार्टियों में विभक्त हो गया, उनमें से एक पार्टी, (गेसड़े से प्रभावित) मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद की समर्थक थी। इस पार्टी ने यह घोषित करते हुये कि पूंजीपतियों का सुधार संभव नहीं, क्रांति को भी अपने कार्यों का अंग बनाया परन्तु ऐसा करने पर भी, उन्होंने चैम्बर और म्यूनिसिपल कौसिलों में शरीक होने के लिये प्रतियोगितता भी की। इनका यह कार्य सुधारमूलक नहीं था

अपितु इसके द्वारा वे जनता पर अपना प्रभाव डालना चाहते थे। दूसरी पार्टी "पाल ब्राउसे" (Paul Broutse) की अधिनायकता में, जो अपने को संभववादी (Possibilst) कहा करते थे, इगलैंड फैवियन सुसाइटी के अनुयाइयों की तरह, पार्लियामेन्ट, म्यूनिसिपैलिटी और सिविल सरविस में घुस कर अपना अधिकार वढ़ाने के रुख में थी। यह मज़दूर श्रेणी के अधिक निकट थी। अस्तु इस प्रकार के अनेक परिवर्तन फ्रेंच दृष्टिकोण में होते रहे और अनेक पार्टियां बनती और बिगड़ती रहीं। इन सब उतार चढ़ाव का प्रभाव फ्रांस के कृषकों पर, जो फ्रांस की सब से बड़ी पार्टी थी, कुछ नहीं या बहुत थोड़ा पड़ा क्योंकि इस समुदाय ने अपना यह निश्चय नहीं बदला कि संपति के अधिकार को किसी अवस्था में भी नहीं छोड़ना चाहिये। इसीलिये उन लोगों को जो गैसड़े के अनुयायी थे, संपत्ति के सम्बन्ध में अपना उपेक्षाभाव दिखलाना पड़ा।

महायुद्ध का कारण

मूलतत्त्ववादियों में से कुछ एक ने, जो मार्क्सवाद के टीकाकार थे अथवा जो मार्क्सवाद के प्रचार ही के पक्षपाती थे, प्रकट किया और सिद्धांत के रूप से प्रकट करते रहे कि १६१४ के महायुद्ध का कारण फ्रेंच वर्गवादियों में उत्पन्न हुआ सुधारवाद था। उनका कहना था कि यदि फ्रेंच मज़दूर वर्ग के नेता अपना दृढ़ निश्चय युद्ध के विरुद्ध रखते और युद्ध की तय्यारियों का विरोध करते रहते तो जर्मन और आस्ट्रिया वाले भी उनका अनुकरण करने के लिये वाधित होते। इसलिये इस युद्ध का सारा उत्तरदायित्व, फ्रांस के सुधारकों, देशभक्तों और राजनैतिक श्रमसंघ वालों पर है। समाजवाद का

पुराना मन्तव्य कि सदैव युद्ध के विरोधी रहना चाहिये, द्वितीय अन्तर्जातीय संघ ने बदल कर प्रत्येक को स्वतंत्रता दी थी कि युद्ध के संबन्ध में जैसा चाहें विचार रक्खें। इससे पहले फ्रांस के वर्गवादियों का निश्चय था कि राज्यपरिषदों और मन्त्री मण्डलों में शरीक नहीं होना चाहिये और इसी लिये वे कैबिनट में शरीक होने के सिद्धांत (Millerandism) का विरोध करते रहते थे, परन्तु घटना चक्र और परिस्थितियों ने उन्हें बाधित किया कि वे अपने इस विचार को बदलें। उन्होंने यह विचार बदला। उनके इस परिवर्तित विचार का प्रदर्शन, हम १९२८ ई० में हुये पार्लियामेण्ट के निर्वाचन में देखते हैं। इस निर्वाचन से जो पार्लियामेण्ट बनी उसे हम साझे का राज्य संघ ही कह सकते हैं।

परिणाम

इंगलैंड और जर्मन से वर्गवाद पहले ही रुखसत हो चुका था, जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है। फ्रांस की वर्तमान अवस्था (१९२८ ई० तक की अवस्था अभिप्रेत है) प्रकट करती है कि मार्क्स का मूल वर्गवाद अब वहां भी प्रचलित नहीं रहा) फ्रांस में अब जो कुछ है वह वर्गवाद का अधिकांश परिवर्तित रूप है। स्पेन में जनरल फ्रांकों की सफलता ने प्रदर्शित कर दिया कि वहां भी वर्गवाद की हार हो चुकी है। अस्तु यौरुप के बड़े २ देशों पर दृष्टिपात करने से साफ़ ज़ाहिर है कि वहां मार्क्सवाद असली रूप में सफल नहीं हो सका। अब हमको रूस पर एक दृष्टि डालनी बाक़ी है। इसलिये अब हम रूस में घटित घटनाचक्र जनता के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

दसवां अध्याय

रूस में वर्गवाद या मार्क्सवाद की प्रारंभिक सफलता क

रूस में क्रान्ति का प्रादुर्भाव

कारण वर्गवाद के सिद्धांत नहीं थे बल्कि जार का अन्याय और अत्याचार था, जो वह राज्य शासन के नाम से प्रजा पर किया करता था पश्चिमी युद्ध ने उस क्रान्ति के विचार में चार चांद लगा दिये। रूस की प्रजा का यह सौभाग्य था कि उसे लीनन जैसा चरित्रवान चुस्त और चालाक नेता मिल गया। लीनन की कुछ बातें हम लिखेंगे। युद्ध अभी समाप्त नहीं होने पाया था कि पैट्रोग्राड में विद्रोह फैल गया। मार्च १६१७ ई० में एक बड़ी हड़ताल हुई। दो लाख चालीस हज़ार हड़तालियों ने नगर में घूमना प्रारंभ किया। रूस के प्रसिद्ध "कास्ट" सैनिक, जो हड़तालियों के दमन के लिये नियुक्त हुये थे, विद्रोहियों से मिल गये। इस प्रकार जार की सरकार का शासन सूत्र ढीला हो गया। यहां तक कि रूस के बड़े अमीरों (Grand Dukes) ने भी जार के शासन की निन्दा की। जार की सरकार का अंत हुआ और शासन सूत्र एक उदार और मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों से बनी गवर्नमेन्ट के हाथ आया, जिन्होंने प्रजा को विश्वास दिलाया था कि प्रजातंत्रीय नियमों के अनुकूल शासन रहेगा और पश्चिमी पूंजीपतियों की पद्धति के भीतर रहते हुये क्रमशः सुधार करने का यत्न किया जायगा। परन्तु शासक समुदाय निर्बल था इसलिये यह गवर्नमेण्ट सफल

नहीं हुई। इसलिये क्रान्ति समाप्त नहीं हुई। यद्यपि क्रान्तिकारी मज़दूर और सिपाही थे परन्तु गवर्नमेण्ट की बागडोर फिर अमीरों ही (Bourgeoisie) के हाथ आ गई। परन्तु यह सरकार भी प्रजा की तीन मांगों—शान्ति, रोटी और स्वतंत्रता को पूरा नहीं कर सकी। इसलिये रूस के समाजवादियों ने इनका समर्थन नहीं किया और यत्न करना प्रारंभ किया कि शासन सूत्र डूमा (रूसी पार्लियामेण्ट) के हाथ न रहे अपितु सोवियट के हाथ आ जावे।

लीनन का क्रान्ति में भाग लेना

लीनन जो अब तक देश बहिष्कृत था, जर्मन गवर्नमेण्ट की सहायता से रूस में दाखिल हुआ। सामयिक गवर्नमेण्ट ने भर सक यत्न किया कि प्रजा को विश्वास हो जावे कि वह जर्मन गुप्तचर है, परन्तु लीनन समय की प्रतीक्षा में था। अक्टोबर १६१७ ई० में उसे विश्वास हो गया कि क्रान्ति के लिये उचित समय आ चुका है। इस बीच में सोवियट की एक कांग्रेस हुई जिसमें रूस के प्रत्येक भाग से प्रतिनिधि आकर सम्मिलित हुये थे, उसके द्वारा देशव्यापी क्रान्ति आन्दोलन प्रारंभ हुआ। बोलशेविकों ने बागी सिपाहियों और नाविकों की सहायता से पेट्रोग्राड के मुख्य मुख्य भागों पर कब्जा कर लिया। इसके कुछ एक साल बाद ही मास्को भी उनके अधिकार में आ गया और अब प्रान्तों पर भी, इसके बाद उन्होंने अधिकार करना आरम्भ कर दिया।

लीनन की घोषणा

लीनन ने इसके बाद घोषणा की कि समस्त भूमि प्रजा की संपत्ति है और यह कि कृषकों ने क्रान्ति से उसे प्राप्त किया है।" अब बोलशेविक गवर्नमेण्ट के दो कर्तव्य निश्चय किये गये :—(१) युद्ध को समाप्त करना।

(२) दुर्भिक्ष को रोकना। लीनन इनकी पूर्ति का यत्न कर ही रहा था कि इसी बीच में जर्मन की हार हो गई और वारसेली की संधि के अनुसार कुछ रूस के खोये हुये प्रान्त उसे फिर मिल गये, जिससे युद्ध की समाप्ति के साथ ही दुर्भिक्ष का भय भी कम हो गया। अब ट्रोट्स्की (Trotsky) को लाल सेना का सेना पति बनाया गया। यद्यपि ट्रोटस्की सिपाही नहीं था परन्तु उत्कृष्ट संगठनकर्ता था। अब जो वोलशेविकों का युद्ध गोरों से था, उस के लिये दो ही बातें आवश्यक थीं—(१) उत्तम संगठन। (२) और प्रजा की सहानुभूति, ट्रोटस्की ने इन्हें उत्तमता से पूर्ण किया। अपनी फ़ौजी स्थिति को दृढ़ करने के लिये वोलशेविकों ने सभा शासित श्रम की प्राप्ति के लिये अनियन्त्रित स्वामी प्रथा (A rigid dictatorial system of militarized labour) को प्रचलित किया[1] परन्तु फल स्वरूप अनिवार्य प्रतिक्रिया का प्रारम्भ हुआ।

लीनन का पूंजी-प्रथा प्रचलित करना

भूखे किसान और कहीं कहीं सिपाही और नावकों ने भी मिल कर वोलशेविक सरकार के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया और मेन शेवकों के नेतृत्व में वे क्रान्ति करने पर उतारू हो गये। यह आन्दोलन फ़ौज के बल से दबा दिया गया परन्तु दुर्भिक्ष जारी रहा। तब लीनन ने मजबूर होकर अस्थायी रीति से नियंत्रित पूंजीप्रथा को जारी किया, जिससे कृषकों और छोटे अल्पधनी व्यापारियों को लाभ पहुंचाया जावे।[2] इससे वोलशेविक सरकार

(1) A History of Socialism by Sally Graves p. 171.
(2) Do p. 171.

को थोड़ा श्वास लेने का अवसर प्राप्त हो गया और उसने अपने खोये हुये व्यापार को फिर जारी किया और इस नई पूंजीप्रथा से उसकी आर्थिक अवस्था भी कुछ सुधरी।

आर्थिक सुधार

छोटे छोटे कला कौशल्र के कार्य यथापूर्व प्रचलित रहे परन्तु बड़े बड़े कारखाने सोवियट कांग्रेस की निर्माण की हुई सर्वोच्च आर्थिक समिति की देख रेख में पबलिक ट्रस्ट से खोले जाने लगे, बैंक भी सरकार के नियन्त्रण में आ गये और कोआपरेटिब सुसाइटियों ने सहायता देने का काम जारी किया। सोवियट का यह नया पूंजीवाद पूंजीवाद तो था परन्तु अन्त को वह राज्य के पूंजीवाद के रूप में परिवर्तित हो जायगा, ऐसा विचार था।

१९२३ ई० में बना हुआ रूस का राजसंगठन

सैली प्रेस की सम्मति में १९२३ ई० में रूस की बनी हुई गवर्नमैंट, एक प्रकार की उस प्रकार की गवर्नमैंट है, जिसे ग्रीक में (Hierarchical Govt:) कहा जाता था। रूस की इस गवर्नमैंट का ढांचा इस प्रकार का था :—

(१) कृषक समुदाय ने गुप्त वैलट के द्वारा अपना प्रतिनिधि चुना—ये प्रतिनिधि ज़िला सोवियट के एक अंग बने।[1 2]

(२) ज़िला सोवियट अपना प्रतिनिधि प्रान्तिक सोवियट (Regional Soviet) को लिये चुनता है।

---

(1) A History of Socialism P. 173.

(2) Soviet—Council of workman and preasants.

(३) प्रान्तिक सोवियट सोवियट प्रजातंत्र (The Soviet of Republic) के लिये अपना प्रतिनिधि चुनता है।

इसी प्रकार चुनावों से "आल यूनियन कांग्रेस आव सोवियटस्" (The All Union Congres of Soviet—R. U. C. S.) बन जाती है। यह वर्ष में एक बार संगठित होती है।

(४) इसी प्रकार भिन्न भिन्न जातियों के प्रतिनिधियों से जातीय संघ (Council of Nationalities) बनता है। ये जातीय समुदाय यूनियन आव सोशियलिस्ट सोवियट रिपब्लिक (V. S. S. R.) के अन्तर्गत होते हैं।

(५) उपर्युक्त यूनियन और कौन्सल ये दोनों मिलकर मुख्य प्रबंधक सभा (The central executive committee T. S. I. K.) का निर्माण करते हैं।

(६) यह मुख्य प्रबंधक सभा प्रेजेडियम (Prasidium) प्रेसीडेण्ट का निर्वाचन करती है और यह प्रेसीडेण्ट सोवियट मन्त्री मण्डल Council of Commissars) का नियंत्रण रखता है। सं० ३ में वर्णित सोवियट प्रजातंत्र (The A. V. C. S.) सिद्धांत के रूप में सब से बड़ा संघ आईन बनाने वालों का समझा जाता है।

(७) प्रारंभिक निर्वाचन में एक प्रति २५ हजार नगर के मत दाताओं की ओर से लिया जाता है और इस प्रकार एक प्रतिनिधि प्रति एक लाख २५ हजार ग्राम के मत दाताओं का होता है।

नोट—साफ़ ज़ाहिर है कि इस प्रतिनिधि निर्वाचन में ग्रामों की अपेक्षा नगरों का अधिक मान किया गया है अथवा यों कहिये कि उन्हें अधिक अधिकार दिये गये हैं।

(८) सर्वोच्च आर्थिकसमिति (The Supreme Economic Council) समस्त देश के व्यवसायों का नियन्त्रण करते हैं, उस में गवर्नमेंट, व्यापारिकसंघ और कोआपरेटिव सुसाइटियों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। इस का प्रधान अपने पदाधिकार से (T. S I. K.) प्रबंधक सभा का मेम्बर होता है।

१९२३ ई० के इन सुधारों के बाद लीनन युग समाप्त हो चुका था और स्टालिन युग ने उसका स्थान लिया था। ट्राटस्की को देश निकाला दिया जा चुका था। स्टालिन के लिये लीनन ने अन्तिम दिनों में कहा था कि वह उद्धत, अशुभचिन्तक, चपल अवर्गवादी और ईर्ष्यालु (Rude, disloyal capricious, Nationalist & spiteful) है।

(९) परन्तु उस के मरणासन्न होने पर यह कहना कुछ उपयोगिता नहीं रखता था—

प्रारम्भ में लीनन या उस के बाद स्टेलिन रूस का डिक्टेटर हुआ और ये दोनों जो चाहें अपनी इच्छानुसार सब कुछ करते थे और करते हैं।

लीनन की आज्ञाओं को एक निकृष्ट डिक्टेटर के रूप में पाकर उस के एक फौजी आफिसर ने, उन आज्ञाओं को अपने लिये असत्य समझकर, लीनन के पास जाकर त्यागपत्र दिया कि "मुझे अपना काम करने दो और तुम जाकर अपना काम करो अन्यथा गोली से मार दिये जाओगे।"

लीनन का उदाहरण

लीनन में जहां अनेक गुण थे वहां इस प्रकार के काम करने में उसे ज़रा भी संकोच नहीं था :—(क) प्रेम में उस ने अपना

नाम "मोड्रा चेक" (Modra Chek) प्रकट कर रखा था परन्तु मुनीच में अपना नाम "मेइर" (Maier) बतलाया था।[1] (ख) लीनन ने स्वीडन का जालीपास्पोर्ट बनाकर रूस जाने का यत्न किया।[2] (ग) फिर उसने इसी प्रकार का जाली-पास्पोर्ट एक पुलिस के अफसर से बनवाया था।[3] (घ) उस ने मसनूई बाल लगा कर और भ्रुओं के बालों को रंग कर बदले हुए लिबास में पीटर्स वर्ग जाने के लिये विबोर्ग की यात्रा की।[4] (त) लीनन को उस के जीवन में लोग उसे गुंडा (Bandit) और जरमन जासूस कहा करते थे।[5] (थ) उस ने जेलखाने में लिये डबलरोटी के एक टुकड़े की दावात बनाई थी और जब जेल के बारक में जाने के वक्त तलाशी होती थी, तब उसे मुंह में छिपा लिया करता था।[6]

स्टैलिन के कारनामे

रूस का एक राजनैतिक "कादैल काका बीडस" रूस से भाग कर बरलिन आया और उसने अप्रेल १९३४ ई० में प्रकट किया कि स्टैलिन जार से अधिक अन्यायी है। वह ज़रा भी मतभेद प्रकट करने पर अपने साथियों को फांसी के घाट उतरवा

---

1. Lenin & Gandhi by Rene Fulop Milly P. 8—69
2. Do p. 82
3. Do p. 85
4. Do p. 85
5. Do p. 101
6. Do

देता है। ३ लाख पौंड सालाना केवल उसका निज व्यय होता है। इत्यादि। स्टैलिन ने कार्देल के लिये हुक्म दे रखा है कि उसे जिन्दा या मारकर लाया जावे।[1]

(व) स्टैलिन की ईश्वर विरोधी नीति के कारण तथा उस से मतभेद रखने से जो व्यक्ति बध कराये गये उन का विवरण इस प्रकार है :—

३१ लाट पादरी, १५६० छोटे पादरी, २४५८५ वकील और जज, ७९९७९ क़ानूनी अफ़सर, १६३६७ प्रोफेसर और विद्यार्थी, ९५८९० अमीर और रईस.५६३४० सिविल और फ़ौज के अफ़सर, २ लाख मजदूर स्त्री पुरुष, ३ लाख राजनैतिक कार्यकर्त्ता, ९ लाख किसान, ५००० गिरजा गिराये गये, 2½ लाख रूसी बाहर चले गये [2]

(ख) पंचवर्षीय कार्यक्रम में स्टैलिन को स्वीकार करना पड़ा कि वर्गवाद के सिद्धांत के अनुसार पठित और अपठित मज़दूर एक जैसी मज़दूरी पर नहीं रह सकते इसलिये उसने घोषणा की कि "In each industry & each factory there are advanced group of Skilled workers who can be retained in employment only by promoting them and raising their wages." अर्थात् उच्च श्रेणी के कार्यकर्ताओं की मज़दूरी बढ़ाकर ही उन्हें

---

1. Sunday Express के हवाले से तेज ने लिखा है (देखो रोज़ाना तेज देहली ता० ३ मई १९३४ ई०)

2. Socialism reconsiderd by M. R. Massani P. 22

(2) The Reformer Lahore 11-3-1945.

अपने कारखानों में रक्खा जा सकता है।[1] फिर इसी प्रकरण में उसने एक दूसरी घोषणा में कहा है:—"कार्य कर्ताओं में जो विशेषज्ञ हैं, उन पर सख्ती करना हानिकारक और अपमान जनक कार्य है। इस लिये हमें अपना विचार, इनजीनियरों और विशेष कला भिज्ञों के लिये, जो पुराने विचार के है, बदल लेना चाहिये। हमें उसकी अधिक परवाह करनी चाहिये और उनकी और अधिक ध्यान देना चाहिये और उन्हें उत्साहित करना चाहिए कि वे हमारा काम करें। कुछ एक हमारे साथी चाहते हैं कि कारखानों में केवल वर्गवादी ही उच्च पदों पर नियुक्त होने चाहिये और इसी लिए कई वार हमें योग्य और उत्तम कार्य कर्त्ताओं को, जो हमारी पार्टी के नहीं थे, निकाल देना पड़ा और उनकी जगह उनसे कम योग्य वर्गवादियों को रखना पड़ा इस बात के कहने की ज़रूरत नहीं कि इससे बढ़कर बेहूदा और बुरे व्यवहार का काम और कोई नहीं हो सकता और ऐसे कामों से वर्गवादी समुदाय बदनाम और विश्वास करने के अयोग्य ठहरता है और इससे अवर्गवादी कार्यकर्ता हमारे शत्रु बन जाते हैं।[2] स्पष्ट है कि अनुभव के आधार पर यहां वर्गवाद के सिद्धांत अव्यवहार्य प्रमाणित हुए।

(ग) सोवियट रूस में बोलशेविक संप्रदाय के प्रचलित होने से यह नियम प्रचलित किया गया था कि वर्गवादी मज़दूर राशनकार्ड के द्वारा भोजन वस्त्र पाते रहें और काम करें। उन्हें काम की और कोई मजदूरी नहीं मिलती थी, परन्तु अवर्गवादी

---

(1) The Leader Allahabad 8-8-1941

(2) Do D 5-5-1933.

मज़दूर मजदूरी पाते थे, उन्हें राशनकार्ड नहीं मिलता था, अनुभव ने प्रमाणित किया कि वर्गवादी मज़दूर थोड़ा और दूसरे मज़दूर ज्यादे काम करते थे। एक अन्तर और भी था कि दूकानों से वर्गवादियों को कम मूल पर चीजें मिला करती थीं परन्तु अवर्गवादियों को उन्हीं चीजों के ज्यादे दाम देने पड़ते थे। इससे जहां एक ओर काम कम हुआ वहां दूसरी ओर असन्तोष भी बढ़ा। इसलिये वी० एम० मोलोटोव (V. M. Molotove) जो वर्गवादी संग के प्रधान थे. उन्होंने उपर्युक्त प्रथा को बंद करते हुए घोषणा की कि भविष्य में प्रत्येक को चाहे वर्गवादी हो या अवर्गवादी काम की मदूजरी मिला करेगी. जैसी प्रथा अन्य सभी सभ्य देशों में प्रचलित है।[1] इससे भी वर्गवाद की अव्यवहारिकता सिद्ध होती है।

रूस में लीनन और स्टैलिन के व्यवहार

इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले हम लीनन और स्टैलिन के क्रियात्मक जीवन पर एक दृष्टि डाल देना उचित समझते हैं, जिससे सुगमता से समझा जा सके कि लीनन का सोवियट अब केवल कागज़ के पृष्ठों पर बाक़ी रह गया है। लीनन और ट्रौटस्की ने जो अक्तूबर १९१७ में रूस में क्रांति उत्पन्न की थी उसका उद्देश्य था "शान्ति, भूमि और रोटी" सिपाहियों के लिये शान्ति, कृषकों

(1) The Monthly Review issued by U. S. S. R. Trade Deligation in great Britain for the month of January 1936, quoted in the Hindustan Times Delhi 23. 2. 36.

के लिए भूमि और मजदूरों के लिए रोटी। क्रान्ति के सफलता पूर्वक समाप्त होते ही बोल्शेवकों ने घोषणा की थी कि जारइज्म के साथ वे पूंजीवाद की भी समाप्ति करके रूस में स्वतंत्र और समतामय समाज की स्थापना करना चाहते हैं, जिस का अभिप्राय यह था कि वह समाज श्रेणी रहित, प्रजातंत्रीय और अन्तर्जातीय होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निज संपत्ति समाप्त की गई, कारखानें और खानों की पैदावार मालिकों से लेकर राज्य की संपत्ति ठहराई गई, जिसका नियंत्रण कार्यकर्ता करेंगे, फौज़ी और जहाज़ी दुनियां में नीच ऊंच प्रकट करने वाले दरजे और पद उड़ादिये गए, स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिले।

शिक्षाप्राप्ति का सब को एक जैसा अवसर दिया गया। वर्गवादियों ने राजनैतिक सत्ता अपने अधिकार में करके घोषणा कर दी कि ज्योंही पूंजीवाद नष्ट हो जायगा पूर्ण प्रजातंत्रीय राज्य व्यवस्था प्रचलित हो जायगी, लीनन ने आघोषित किया कि प्रत्येक पाचक (cook) को राज करना सीखना चाहिये, उस समय कुछ एक व्यक्तियों का राज्य समाप्त हो जायगा। इन घोषणाओं से रूस की प्रजा अत्यन्त प्रसन्न हुई और लोग भाई भाई की तरह से रहने लगे और ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब पुलिस और फौज की ज़रूरत नहीं रहेगी।

१९२७ ई० में रूस की अवस्था

एक यात्री ने उपर्युक्त क्रान्ति के बाद जब रूस को देखा तो उसे प्रकट हुआ कि वहां भ्रातृभाव प्रचलित है और रंग वाली प्रजा के लिये तो मानों रूस स्वर्ग हो गया। एक निगरो ने हर्षाश्रु के साथ कहा कि

"रूस ही एक देश है जहां हम आदमी समझे जाते हैं"। कारखानों में कार्यकर्ताओं का नियंत्रण था। प्रत्येक कारखाने में दो प्रबन्धक होते थे, एक कलाभिज्ञ और दूसरा लाल प्रबंधक। यह दूसरा प्रबंधक प्रजा का प्रतिनिधि होता था और मज़दूरों की मज़दूरी, काम के घण्टों आदि के संबन्ध में कोई नियम; दूसरे प्रबंन्धक की स्वीकारी के बिना; प्रचलित नहीं हो सकते थे। शिक्षा विभाग में परीक्षायें उड़ा दी गई, वर्दी पहनना बंद किया गया। अपराधी अध्यापकों का निर्णय स्कूल की अदालतें करती थीं। जो अध्यापक और विद्यार्थियों के प्रतिनिधियों से बना करती थीं। जानडैवी (John Dewey) इस शिक्षा प्रबंध को देख कर इतना प्रभावित हुआ कि "मुझ में इतनी शिक्षा नहीं कि मैं उसे बर्णन कर सकूं"। (I have not sufficient literary skill to describe it) [1]

विवाह और तिलाक़ के क़ानून इस प्रकार संशोधित हुए जिससे स्त्रियों का दरजा पुरुषों से नीचा न रहे। स्त्रियों के स्वास्थ्य की दृष्टि से गर्भपात करना वैधानिक ठहराया गया था सन्ततिनिग्रह का खूब ढंढोरा पीटा गया। चर्च जो जार इज्म के अंग थे, नष्ट किये गये। सहशिक्षा प्रचलित की गई। [2]

---

(1) Socialism reconsidered by M.R Masani p 12 & 13.

(2) Do p. 13 & 14.

वही यात्री रूस को और उन्नत देखने की शुभ आकांक्षा के साथ फिर १९३५ ई० में रूस गया परन्तु अब वहां का नकशा पलट चुका था। पंचवर्षीय योजना पूरी हो चुकी थी। कुछ आर्थिक सुधार दिखाई देता था।

१९३५ में रूस की अवस्था

वर्गवाद के हाथ से राज्य निकल कर एक डिकटेटर के हाथ में जा चुका था। सार्वलौकिक स्थानों से लेनिन के चित्र हटाकर स्टैलिन के लगाये गये थे।

गुप्तचर पुलिस (G.P.U.) प्रत्येक स्थान पर मौजूद थी, रूस की राजधानी मास्को में वर्गवादियों के स्थान में अधिकतर राजलोलुप व्यक्ति दिखाई देने लगे थे। कारखानों से "लाल प्रबंधक" दूर किये जा चुके थे। कार्यकर्ताओं का शासन भी नष्ट हो चुका था। ऐसे मज़दूरों का आधिक्य दिखाई देता था, जो स्पर्धा के साथ एक दूसरे से अधिक काम करने में इच्छुक थे। इस प्रथा को "स्टाखनोवइज्म (Stakhnovism)" कहा जाता है। पूंजीपतियों की भाषा में इसे पीसवर्क (Piece work) कहते हैं। फल इसका यह था कि कई मज़दूर अपने से निर्बल मज़दूरों से पंचगुना और १० गुना तक अधिक काम कर लेते थे।

स्कूलों से स्कूल शासन की प्रथा बंद कर दी गई, कड़ा नियंत्रण रहने लगा, परीक्षायें फिर प्रचलित कर दी गई। वर्दी फिर पहनाई जाने लगी। और विद्यार्थियों की देख रेख स्कूल में और स्कूल से बाहर वहां की गुप्तचर पुलिस करने लगी। तलाक़ की प्रथा कठोर कर दी गई। गर्भपात करना अवैधानिक ठहराया

गया। संततिनिग्रह बुरा समझा जाने लगा। राज की ओर से घोषणा की जाने लगी कि जिस परिवार में ११ तक बच्चे होंगे, उन्हें पारितोषिक दिया जाया करेगा। जर्मन की तरह यहाँ किताबें तो नहीं जलाई गईं परन्तु पुस्तकालयों से नापसन्दीदा पुस्तकें दूर कर दी गईं। पाठ्य पुस्तक नये बनाये, इतिहास अपने अनुकूल तय्यार करा दिये गये। दूर की हुई पुस्तकों में से एक ग्रन्थ जानरीड का भी था जिसका नाम था "Ten days that Shook the world." इस ग्रन्थ को लीनन ने पसन्द करके उसमें वर्णित हालात को ठीक बतलाया था। यह ग्रन्थ केवल इसलिये नष्ट किया गया कि इसमें अनेक जगह लीनन के नाम के साथ ट्रोटस्की का भी नाम अच्छे शब्दों में लिया गया था। इन हालात को देख कर उस यात्री को निराशता के साथ रूस से वापस आना पड़ा।[1]

रूस की स्वतन्त्रता का नग्नरूप

(१) सोवियट रूस की ओर से एक बोर्ड है, जिसे वहां "ग्लैवलिट (Glavlit) कहते हैं। यह जांच पड़ताल करने का सब से बड़ा विभाग (Supreme Board of Sensorship) है। इसकी स्वीकृति लिये बिना रूस में कोई ग्रन्थ नहीं छप सकता, दैनिक साप्ताहिक या मासिक पत्र उसी अवस्था में निकाले जा सकते हैं, यदि उनके संचालक प्रतिज्ञा करें कि सोवियट राज्य की नीति के सदैव समर्थक रहेंगे। इस बोर्ड की स्वीकृति बिना बाहर से कोई ग्रन्थ रूस में नहीं आ सकता।

(1) Socialism reconsiderd by M. R. Masani P. 14—16.

रूस में कोई धार्मिक ग्रन्थ नहीं छप सकता।[1]

(२) ५ दिसम्बर १६३४ को सोवियट रूस ने अपनी सरकार के ६६ अफ़सरों को मत भेद होने के कारण फांसी के तख्तों पर एक साथ लटका दिया।[2]

(३) एक अमरीकन विद्वान् जो अमरीका का पत्रकार (Journalist) था और जिसका नाम जानरीड (John Reed) था और जिसके एक ग्रंथ के नष्ट किये जाने की बात कुछ पहले कही जा चुकी है और जो अपने वतन अमरीका को छोड़कर लीनन का साथी बन गया था, वह १६१६ ई० में मर गया। वह रूस में देवताओं की तरह माना जाता था। मरने पर उसे मासकों में लीनन के बराबर दफ़न किया गया। उसके मरने पर समस्त सरकारी दफ़्तर बंद हो गये थे और १० हज़ार से अधिक आदमी उसके जनाजे के साथ गये थे। उसके जीवनकालीन मित्र एक रूसी व्यापारी जे० एच० रुबिन (Jacob H Rubin) ने, जो अमरीका में व्यापार करता है, उस (जानरीड) के सम्बन्ध में एक पुस्तक प्रकाशित की है।[3] उस पुस्तक के कुछ एक उद्धरण यहां दिये जाते हैं। पुस्तक में रोबिन ने जान रीड के लिये लिखा है कि उसने आँसू बहाते हुये दुःखी होकर उससे कहा :—

"रोबिन! मुझे (वर्ग वादी बनने से) क्या लाभ हुआ। मैं ने अपने मित्रों को (वर्ग वादी बनने के लिये) छोड़ा, परिवार

(1) The Leader Allahabad 11-1-1930.

(2) Modern Review January 1935 p. 133

(3) Moscow Mirage by J. H. Rubin quoted in the daily Hindustan Times Dated 7. 6 1935

को छोड़ा, परन्तु इससे क्या लाभ हुआ ? क्या सोवियट रूस के आदमी अमरीका निवासियों से कुछ अच्छे हैं ? कदापि नहीं ! क्या वर्गवाद ने किसी बात में भी सफलता प्राप्त करली है ? कदापि नहीं !

"मैं जन्म भर वर्गवादी रहा परन्तु मुझे निश्चय हो गया कि दुनियाँ हज़ारों वर्षों तक इस (वर्गवाद) के ग्रहण करने के योग्य न होगी" !

"अपने वर्गवादी नेताओं को देखो, वे जब समर्थ होते हैं तब क्या करते हैं ? लीनन ट्रोटस्की और ऐसे ही कुछ एक को छोड़कर बाक़ी सभी छली राजनीतिज्ञ, ख्यालीपुलाव पकाने वाले और निरे मूर्ख हैं" ।

"यह बात (रूस में) प्रत्येक जानता है कि 'चेका' के मुखियागण रिशवत लेते हैं, चोरी करते हैं और यहां तक कि लोगों को, उनका धन लेने के लिये, मार तक डालते हैं" ।

"सरकारी उच्चपदों पर और कारखानों में कौन आदमी नियत होते हैं ? वर्गवादी गण, योग्यतारहित राजनीतिज्ञ, ख्यालीपुलाव पकाने वाले जो अपना समय, चाय पीने व्याख्यान देने और पार्टी बन्दी करने में, लगाया करते हैं ।" "अमरीका में पूंजीवाद को, मैं घृणा करता था परन्तु वहां मुझे स्वतंत्रता थी कि जिस गली कूंचे में चाहूं अपना मत प्रकट करूं । परन्तु यहां (रूस में) जो चाहते हैं कि दुनियां भर को स्वतन्त्र कर दें, मैं बोलशेविक सरकार की आलोचना नहीं कर सकता, या एक शब्द भी सहानुभुति का पूंजीपतियों या अल्पपक्ष वालों (Menshe-

viks) के लिये .ज़ुबान से नहीं निकाल सकता ।"❋

❋ असली अङ्गरेज़ी के शब्द इस प्रकार हैं:—"What I have gained Rubin ! Sacrificed my friends, my family myself and for what ? Are the people here any better off than in the United States ? No ! Has communism accomplished anything ? No ! I have been a Socialist all my life, I still am in theory. But I can see now that the world that is human beings—will not be ready for Socialism for thousands of years.

Look at your communist Leaders and what they do when they are in power ! Except for Lenin and Trotskey and a few others, they are grafters, politicians, theorist or hopeless fools.

Every body knows that the heads of Cheke are accepting bribes, stealing, even killing people to get their wealth, who hold the important position in the Govt. and in the factories ? Members of the Communist party, political job holders without any qualifications, dreemers who spend their time drinking tea and making speaches or

" वह (जानरीड) जिस से विदेशी वर्गवादी बड़ा प्रेम रखते थे, भयभीत रहता था कि कोई शब्द उसके मुंह से, बोलशेविक सरकार या उसके कर्मचारियों के विरुद्ध न निकल जावे, यहां तक कि अपने मेहमानों से भी डरता था, इस विचार से कि उनमें कोई सरकारी गुप्तचर न हो।" (John Reed, the best loved of foreign Communist, told Rubin that he was afraid to say anything about the Govt. or the officials, even to his guests, fearing that one of them might be a spy. (Hindustan Times, Date. 7. 6. 1935)

विषमता की वृद्धि

(४) वर्गवादियों में प्रारम्भ में एक नियम प्रचलित था जिसे वर्गवादी "Party Maximum कहा करते थे और जिसका अभिप्राय यह था कि वर्गवाद का कोई भी सदस्य, सरकार से नियत का अल्प परिमाण से अधिक वेतन न लेवे परन्तु अब यह नियम रद्द कर दिया गया, जिसका फल यह होता है कि वर्गवादी बहुत सा धन अपनी सन्तति

working for the party.

In tbe United States I hated the capitatistic system, but I was at liberty to get up on a street corner and express my self. Here where, They are trying to free the whole world I can't criticise the Govt. or say a word of sympathy not for the capitalists not for Menshavik party of the Communist."

के लिये छोड़ जाते हैं। उस धन को पाकर उनकी सन्तति, बिना धन कमाने का यत्न किये, अपनी आयु मौज से व्यतीत करते हैं।

(५) छठी नवम्बर १९३५ के रूसी सरकारी आर्गन "प्रवदा" (Pravda) में प्रकाशित हुआ था कि अनस्पर्धावादी खानों के मज़दूर (Non Stokhanovist minor) सोवियट के खानों में ४०० से ५०० रोबिल (रूसी सिक्का) तक पाते हैं परन्तु स्पर्धावादी १६०० रोबिल से अधिक प्राप्त कर लेते हैं। उन्हीं कानों के सहकारी मज़दूर यदि अनस्पर्धी हैं तो १७० रोबिल और यदि स्पर्धी हैं तो ४०० रोबिल प्राप्त कर लेते हैं। इन्जीनियरों और विशेषज्ञों का वेतन प्राय: अशिक्षित मज़दूरों से ८० गुना होता है। एक अच्छा पुस्तक लेखक ३० हज़ार रोबिल प्रतिमास प्राप्त कर लेता है।

(६) सोवियट सरकार ने यह नियम बना रखा है कि कोई व्यक्ति न कोई कारखाना खोल सकता है, न रेल जारी कर सकता है परन्तु सोवियट जारी किये हुये "स्टेट बांडों" को जिनका ७ फ़ीसदी सूद राज्य देता है, जितने चाहे कोई क्रय कर सकता है। इस प्रकार से व्याज खाने वाले पूंजीपतियों की एक नई श्रेणी रूस में बन रही है। "ईथल मैनिन" (Ethal Mannin) प्रसिद्ध अंगरेजी लेखक ने प्रकट किया कि जब वह "मोलोटोव (Molotove) जो स्टैलिन का सीधा हाथ माना जाता है, की पत्नी के पास मिल ने गया तो उस देवी के राजसी ठाट को देख कर वह आश्चर्य में पड़ गया परन्तु उसके सेवक वही फटे पुराने वस्त्रों में देखे गये। यह है रूस में आज कल की समता।

(७) सहशिक्षा जब बन्द की गई तो सोवियट की ओर से

उसका हेतु यह किया गया था कि पुरुष तो शिक्षा इस प्रकार की पाते हैं जिससे वे सिपाही बन सकें परन्तु स्त्रियों को माता बनाने की शिक्षा मिलनी चाहिये। हिटलर ने भी इसी हेतु के साथ सह शिक्षा बन्द की थी।

मज़हब को पुनः स्थापित किया गया

लीनन ने मज़हब को प्रजा का नशा (opium of the people) कह कर बन्द किया था परन्तु अब स्टैलिन ने निपोलियन के इस कथन का समर्थन करते हुए कि "बिना मज़हब के मैं प्रजा का शासन किस प्रकार कर सकता हूं" (How can I rule the people without religion) फिर नए सिरे से मज़हब की स्थापना करते हुए गिरजा घरों के धार्मिक स्थान होने को स्वीकार किया, पादरी नियत हुए, सोवियट रूस के लिए लार्डबिशप नियत किया गया। प्रत्येक को विश्वासानुसार धर्मग्रंथों के पढ़ने और गिरिजा आदि में जाने की स्वतन्त्रता दी गई।

स्टेलिन और उस की सी. आई. डी.

कार्लमार्क्स ने चाहा था कि जब तक देश में प्रजा का शासन स्थापित न हो सके उस समय तक श्रमजीवियों (Proletariat) का एकाधिपत्य (Dictatorship) रहे परन्तु रूस के स्टेलियन युग में वह आधिपत्य जाता रहा। उसका स्थान स्टैलिन एक ऐसे व्यक्ति ने लिया जो क्रूरता और निर्दयता से अपनी सी० आई० डी० (G.P.U.) द्वारा देश का शासन करता है। उत्तरदायित्व रखने वाले व्यक्तियों का कथन है कि जिन कृषकों ने, जिन की संख्या ७० लाख बतलाई

जाती है और जिन्हें कुलैक्स (Kulaks) कहते हैं, अपनी बोलशेविक सरकार के हवाले नहीं की थी, वे इसी सी० आई० डी० के बदौलत मौत के घाट उतारे गए। इसी प्रकार ५० लाख और एक करोड़ के मध्य ऐसे राजनैतिक जिनकी सम्मति स्टैलिन से नहीं मिलती थी और जिन में ऐसे मुख्य वर्गवादी भी शामिल थे जिन्हों ने रूस की क्रांति में भाग लिया था, वध किए गये। इन व्यक्तियों के अभियोग किस प्रकार निर्णीत हुए इसका विवरण आर्थर कोइस्टला (Arthur Korstla) की पुस्तक दुपहरी में अंधेरा (Darkness At Noon) से अधिक अच्छा कहीं नहीं मिल सकता। ईस्टर मैन के इस कथन में बड़ी सच्चाई है कि यदि निर्दोष व्यक्तियों के ख़ून बहाने की माप तोल की जावे तो स्टेलिन एक झील, हिटलर एक छोटे तालाब (Duck pond) और मसोलिनी एक कुएँ के सदृश ठहरेंगे।" [1] स्टेलिन को रशा में "वड्ड" Leader कहते हैं। "सच तो यह है कि रूस में एक व्यक्ति का शासन है। बलशाली स्टैलिन अपने समस्त विरोधियों और मुक़ाबिला करने वालों का संहार करके बाक़ी रहा है। उसका राज्य "एकाधिपत्य है, श्रमजीवियों का

(1) अंग्रेज़ी के शब्द ये हैं:—"If the shedded blood of innocent men were measured, Stalin's would be a lake ; Hitler's a duck pond ; Mussolini's Could be dipped up by the tank Carful."

(Stalin's Russia & the Crisis in Socialism by Mark Eastman)

नहीं जैसा कहा जाता है अपितु है श्रमजीवियों पर पूर्णतया एक व्यक्ति का शासन ।[1]

स्टैलिन किस प्रकार बलपूर्वक अपने को प्रजाप्रिय कहलाता है, इसका एक अच्छा उदाहरण "ऐण्डरी गाइड" (Andre Guide) ने दिया है । वह रूस गया था और राज्य अतिथि (State guest) था । वह एक छोटे क़सबे में ठहरा था । गाइड ने चाहा कि एक तार अपने आतिथ्यकृत (Host) स्टैलिन के पास भेजे । उसने तार पर "Monsieur Stalin" लिख कर डाकखाने में भेज दिया परन्तु डाकख़ाने से वह वापिस आया कि जब तक स्टैलिन के नाम के साथ "महान और प्रिय" (Great & Beloved) न लिखा जावे, कोई तार स्टैलिन के पास भेजने के लिए स्वीकार नहीं किया जा सकता ।[2]

लीनन और स्टैलिन का एक अन्तर

लीनन पश्चिमी युद्ध के बाद बने जातीय संघ League of Nations) को डाकुओं का समुदाय (A Gang of Robbers) कहा करता था परन्तु १९३५ के बाद उसी डाकुओं के समुदाय में स्टैलिन की गवर्नमेंट ने अपने प्रतिनिधि भेजे और उसके कार्यों में भाग लिया ।

---

(1) Mission to Mascow by J. A. Davies.

(2) Socialism reconsidered by M. R. Massani P. 21.

१९३९ ई० में स्टैलिन और हिटलर ने पारस्परिक सहायता का पैक्ट किया। जब रशा के महामन्त्री से पूछा गया कि वर्गवाद और फैसिज्म का यह पैक्ट कैसा तो "मोलोटोव" ने उत्तर दिया कि "यह सब रुचि का विषय है" (It is all a matter of taste) इस पैक्ट के बाद दोनों ने मिलकर पोलैंड पर हमला किया और पोलैंड के पराजय के बाद दोनों ने पोलैंड के हिस्से करके अपना अपना हिस्सा अपने अपने अधिकार में कर लिया। इस कृत्य या दुष्कृत्य की किस प्रकार वर्गवाद के सिद्धान्तों से संगति लगाई जा सकती है ?

स्टैलिन और हिटलर का गठजोड़ा

वर्गवाद का अन्तर्जातीय संघ १९४३ ई० में बन्द कर दिया गया और समस्त संसार में भ्रातृभाव उत्पन्न करने का राग अलापना भी छोड़ दिया गया। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि अन्तर्जातीय भयभावना रूस से सदा के लिए विदा हो गई और उसका स्थान योरुप की पूंजीपतियों के नेशनल इज्म ने ले लिया। इसका उदाहरण यह देखने में आया कि वर्तमान युद्ध के शुरू हो जाने पर जब १९४० ई० में यह प्रश्न उठा कि युकरैन, जार्जिफ, तुर्किस्तान, तातार और साइबेरिया निवासियों की शिक्षा का माध्यम क्या हो तो सोवियट सरकार ने उत्तर दिया कि 'यद्यपि ये सभी राज्य अपना अपना प्रजातन्त्रीय शासन रखते हैं फिर भी इन जातियों की शिक्षा उनकी मातृभाषा में न होकर रूसी भाषा ही में होनी चाहिए"। रूसी भाषा इन जातियों के लिए ऐसी ही विदेशी भाषा है जैसे हिन्दुस्तानियों के लिए अंगरेजी।

वर्गवाद से फिर नैशनलइज्म

जब कोई जाति नैशनलइज़्म की ओर चलती है तो उसकी मनोवृत्ति भी उसी प्रकार की हो जाती है जैसी धन और राज-सत्ता के अभिमानियों (Imperialist) की होती है। आज सोवियट रूस में यही चिन्ह व्यक्त हो रहे हैं।

(१) जब वेन्डेल विल्की (Wendall Willkie) ने यह प्रश्न उठाया कि रशा का अपने पड़ोसी देशों (तुर्किस्तान आदि) से क्या सम्बन्ध है ? तो सोवियट के आर्गन 'प्रवदा' (Pravda) ने गुर्राते हुए, यह उत्तर दिया कि यह हमारी भीतरी बातें हैं, इन का तुम से क्या सम्बन्ध ? क्या यह उसी प्रकार की बात नहीं है, जैसी कि चर्चिल ने विल्की को कही थी, जब वह हिंदुस्तान में आना चाहते थे। फिर बतलाओ कि चर्चिल और स्टैलिन में क्या अंतर रहा ?

(२) हैरी पौलिट (Hary Pollitt) और उस के कुछ एक साथियों ने प्रस्ताव करना शुरू किया था कि इंगलैंड और अमरीका मध्यस्थ बन कर रूस और पोलैंड में मेल करा देवें। पौलिट ने इंगलैंड के नागरिक होने से इस प्रकार की बात कही थी परन्तु उसे सोचना चाहिए था कि एक रूस निवासी भी कह सकता है कि स्टैलिन मध्यस्थ बन कर इंगलैंड और हिन्दुस्तान के मामले को सुलझा देवें। यदि चर्चिल कह सकता है कि इंगलैंड और हिन्दुस्तान का मामला उनका घरेलू मामला है तो स्टैलिन क्यों नहीं कह सकता कि पोलैंड का मामला भी उसका घरेलू मामला है। यह उत्तर और प्रत्युत्तर तो ठीक माने जा सकते हैं, यदि चर्चिल और स्टैलिन दोनों को एक श्रेणी का व्यक्ति माना जावे, परन्तु यदि स्टैलिन वर्गवादी या कम से कम पूँजीपतित्व मनो-

वृत्ति के विरुद्ध होता तो जरूर इस देश के मामले में हस्तक्षेप करता परन्तु स्टैलिन का अब वर्गवाद से उतना ही सम्बन्ध है जितना वह उसकी पूँजीपतित्व मनोवृत्ति का साधक है।

सोवियट रशा एक कामनवैल्थ के रूप में

अभी कुछ दिन हुए जब स्टैलिन की सरकार ने घोषणा की थी कि रशा के समीपवर्ती देश जो प्रजातन्त्र राज्य हैं, सोवियट कामनवैल्थ के अंग हैं। उन्हें स्वतन्त्रता है कि अपना राज्य जिस प्रकार चाहें करें और उन्हें यह भी स्वतन्त्रता है कि चाहें तो "कामनवैल्थ" से पृथक भी हो सकें परंतु 'डैवीज़' ने इसकी वास्तविकता प्रकट की है। इनकी स्वतंत्रता कागज़ी अथवा कथनमात्र है। स्टैलिन या रशा का कामनवैल्थ कभी यह सहन नहीं कर सकता कि वे उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ कर सकें। उनकी स्वतन्त्रता ऐसी ही जैसी इस देश की कथित स्वतन्त्रता। स्वतन्त्र है परंतु स्वतन्त्रता को प्रयोग में नहीं ला सकते। सच तो यह है कि सोवियट रशा ने यह कामनवैल्थ का विचार इंगलैंड से लिया है। रूस ने देखा कि इंगलैंड एक छोटा सा टापू कामनवैल्थ के सहारे पृथ्वी के तीन बड़ों में गिना जाता है तो रूस क्यों न १६ स्वतन्त्र राज्यों का कामन-वैल्थ बन कर इंगलैंड से भी चार क़दम आगे चले। इस से पृथ्वी के एक संगठन में उसके वोट भी बढ़ सकते हैं। अस्तु इन सब बातों पर विचार करने से प्रकट होता है कि वर्तमान स्टैलिन का रूस न तो प्रजातन्त्र राज्य ही है; न श्रेणीरहित समाज ही है, न अन्तर्जातीय कोई संगठन ही है इसलिए उसे वर्गवादी समाज नहीं कह सकते। वह पूर्णतया पूँजीपतिराज्य भी नहीं

है। उसे बर्नहैम की परिभाषा में "प्रबंधकराज्य" (managerial state) कह सकते हैं।

रूस प्रबंधकराज्य (Managerial state) है

प्रबंधकराज्य न तो वर्गवादी ही कहा जा सकता है न पूंजीपति ही। प्रबंधकराज्य और वर्गवादी राज्य में समता यह है कि दोनों में निजी संपत्ति रखना, चाहे वह उपज की हो या विभाजन से प्राप्त हुई हों या परिवर्तन से, निषिद्ध ठहराया गया है और समस्त कारखाने तथा अन्य आर्थिक व्यवसाय का स्वामित्व राज्य को प्राप्त होता है या राज्य द्वारा नियंत्रित किया जाता है। और विषमता यह है कि वर्गवादानुसार राज्य प्रजा की सत्ता होता है परन्तु प्रबंधक राज्य में, स्वयं राज्य और उस की आर्थिक व्यवस्था जिस का जातीयकरण (Nationalised) हो चुका है; प्रजा के अधिकार में नहीं होती किन्तु एक छोटे से गुट्ट के हाथ में होती है। वह गुट्ट चाहे अनियंत्रित शासकों का हो चाहे प्रबंधकर्ताओं का हो। उसी गुट्ट का सर्वाधिकारित्व (Dictatorship) होता है। [1] इस समय रूस का शासन भी स्टैलिन और उसके मुट्ठी भर साथियों ही के हाथ में है। प्रजा का उसमें कोई अधिकार नहीं। अस्तु इस अध्याय में हमने देख लिया कि रूस अब वर्गवादी नहीं रहा और यह कि वर्गवाद अव्यवहार्य भी है।

---

(1) The Managerial Revolution by
James Burnham
(an American social writer)

स्वयं मार्क्स मार्क्स-वादी नहीं था

कार्लमार्क्स ने. इसमें जरा भी संदेह नहीं कि संसार के लाभार्थ जो नियम उसने अच्छे समझे उन्हें प्रचलित करने का आदेश दिया। परन्तु यह बात समझ लेनी चाहिये कि वह कोई संप्रदाय प्रचारक नहीं था, न उसने कोई संप्रदाय प्रचलित करने का यत्न किया। काम में आने से यदि मालूम हो जावे कि वर्गवाद में कोई त्रुटि है तो उसे उदारता के साथ छोड़ देने और अच्छे नये नियमों के ग्रहण करने के लिए सर्वथा और सदैव तय्यार रहना चाहिए। मार्क्सवाद को कोई संप्रदाय ठहराकर ग्रहण और त्याग दोनों नियमों को निरर्थक सिद्ध करने का यत्न करना. मनुष्यत्व को नीचा करना है। मार्क्स ने स्वयं अपने प्रचलित किये नियमों को कभी संप्रदाय नहीं माना था। इसीलिए उसने अपने जीवनान्त में कहा था "Thank God I am not a Markist"[1] अर्थात् "ईश्वर को धन्यवाद है कि मैं मार्क्सवादी नहीं हूं"। इसका अभिप्राय यह है कि आगे अनुभव के आधार पर वह अपने प्रचारित नियमों में संशोधन करने के लिये तय्यार था। इसी का अन्यों को भी अनुकरण करना चाहिये।

---

(1) Socialism reconsidered by M. R. Massain p 54 & 55

ग्यारहवां अध्याय

"मेशीनयुग और पूंजीवाद"

(१) पूंजी जब मशीनों और मशीनवाले कारखानों की वृद्धि में लगती है तब वह देश के लिए हानि कारक सिद्ध होती है क्योंकि उससे बेकारों की संख्या में वृद्धि होती है।

पूंजीवाद के दोष

उदाहरण में यहां हम इंगलैंड को उपस्थित करते हैं। उसके बेकारी के अंकों को देखिये:—

१९२० ई० में बेकारों की संख्या १० लाख थी।

१९२२ ई० में यह संख्या १६ लाख हो गई।

१९२८ ई० में यह संख्या घटकर १२ लाख ६० हजार रह गई परन्तु इस घटने के कारण मालूम नहीं हो सके।

१९२९ ई० में १२ लाख ६२ हज़ार।

१९३० ई० में १९ लाख ६४ ,,

१९३१ ई० में २७ ,, १७ ,,

१९३२ ई० में २८ ,, ४६ ,,

जनवरी १९३३ ई० में २९ लाख ५५ हज़ार।[1]

---

(1) Economist Modern Business by N. V. Hope p. 211 & 212 (Capitalism at Cross Road)

(२) प्रोफ़ेसर हेनरी क्ले (Prof. Henry Clay) ने एक अंकगणनासंघ (Statistical Society) में १६२५ ई० में प्रधान का भाषण देते हुये, कहा था कि बृटेन में ६४.५ पर शतक आबादी की आय ५६ फ़ीसदी है। और ५.५ फ़ीसदी की ४४ पर शतक है। कारख़ाने के स्वामित्व की दृष्टि से ६६.२ आबादी का फ़ीसदी १७.२२ कारख़ानों के मालिक हैं। और बाक़ी ३.८ फ़ीसदी ८२.७८ के मालिक हैं [1] ये अंक प्रकट करते हैं कि इंगलैंड में किस प्रकार पूंजीपतियों का देश के कारख़ानों में आधिपत्य है। यही कारण बेकारी की संख्या वृद्धि का है। क्या समाजवाद से ये बेकारी कम हो जायेगी? होप महाशय का कहना यह है कि समाजवाद वास्तव में है क्या? इसी के समझने में विभिन्नता है।

समाज वाद के समझने में मतभेद

समाज वाद क्या है इसको प्रकट करने के लिये, १६२४ ई० में डैन ग्रोफ़िथ्स ने एक जगह लिखा था कि यह विज्ञान मज़हब, एक प्रकार की प्रवृत्ति, एक पद्धति, एक फ़िलोसफ़ी, एक विशेष प्रकार का वाता-वरण पैदा करने का साधन और एक प्रोग्राम है। [2]

(२) सी० जी० टामौन की सम्मति है कि समाजवाद ईसा की शिक्षाओं का क्रियात्मक प्रकटीकरण है।

(३) एच० सी० चारलेटन ने प्रकट किया है कि यह एक प्रकार का समाज है जो पृथिवी पर स्वर्गराज्य की स्थापना करेगा।

---

(1) Economist Modern Business p-212

(2) What is Socialism by Dan Griffiths

(४) जो लोग इस वाद के विरुद्ध है उनका कहना है[1] कि यह एक यत्न है जिस के द्वारा एक ऐसा विधान बनाया जावे, जिसके द्वारा एक अवैज्ञानिक व्यक्ति सफलताप्राप्त व्यक्ति प्रमाणित हो जावे।

मार्क्स और पूंजीवाद

कार्लमार्क्स ने १८४२ ई० एक पत्र जर्मन में भाषा में, जिसका जर्मन नाम (Rheinische Zsctung) था, निकाला और उसका स्वयं संपादक बना परन्तु वह पत्र भी बन्द कर दिया गया और वह जर्मनी से निकाल भी दिया गया। दुबारा जून १८४६ ई० में पत्र फिर जर्मनी में निकाला गया। इसके बाद वह फ्रांस गया परन्तु वहां से भी जुलाई ४६ में निकाल दिया गया तब वहां से वह लण्डन गया और मृत्यु पर्यन्त वहीं रहा। दो बातें हैं जिनकी ओर मार्क्स ने कभी ध्यान नहीं दिया :—(१) उसने साफ़ शब्दों में कभी यह स्वीकार नहीं किया कि पूंजी उत्पादन का एक साधन है। यह उसने दबी .जुबान से अवश्य स्वीकार किया है कि मैशीनरी के प्रयोग से उत्पादन शक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है परन्तु वह नहीं चाहता कि मैशीन के मालिक को एक पाई भी पारितोषिक दिया जावे। (२) वतुस्ओं के मूल्य नियत करने में उसने कभी "मांग" को ध्यान में नहीं रक्खा। जो किसी ठीक परिणाम पर पहुँचना चाहता है उसे मांग और सप्लाई दोनों बातों की ओर ध्यान देना पड़ेगा।

मार्शल की प्रसिद्ध कहावत है कि क़ैंची के दो फल होते हैं और जब दोनों काम करते हैं तभी क़ैंची का काम पूरा होता है

(1) Modern Business by N. V. Hope p-214

परन्तु मार्क्स एक ही फल सपलाई से काम लेकर क़ैंची का काम पूरा करना चाहता था।[1]

(२) इतिहास का केवल प्राकृतिक होने का विचार तथा श्रेणी संघर्षण का उत्तेजन, ये दोनों बातें भी "होप" के अनुसार ठीक नहीं थीं। हर्नशा ने ठीक लिखा है कि मज़हब, भक्ति और देश-भक्ति, शहीद होने का उत्साह और आत्मीयता केवल प्राकृतिक घटनाओं से सिद्ध नहीं किये जा सकते। केवल प्रकृति ने किस पकार बुद्ध, ईसा, लूथर, टालस्टाय, शंकर और दयानन्द को, ऐसे व्यक्ति बना दिये जैसे वे थे।[2]

कुछ एक अर्ध सचाई

पश्चिमी शिक्षा और सभ्यता से प्रभावित मनुष्य जाति का एक बड़ा भाग, एक ऐसे खड्डे की ओर जा रहा है जिस की गहराई का पता नहीं, उसका कारण पश्चिमी विज्ञान की वह अर्ध सचाई है जो उसने विज्ञान के नाम से प्रकट की है और जो निम्न वाक्यों से प्रकट होती हैं:—(१) बलवानों का जीवित रहना, (२) निर्बलों का रसातल को चला जाना तथा (३) जीवन के लिये संघर्षण करना।[3]

---

(1) Modern Business by
N. V. Hope p. 215-217

(2) Do p-220

(3) अंग्रेजी भाषा में ये वाक्य इस प्रकार है:—
(1) Survival of the fittest (2) The Weekest must go to the down and (3) The Selfish Struggle for existance.

इस अर्ध सचाई के ज्ञान ने लोगों में आपा धापी करने की भावना पैदा कर दी, जिससे अन्यों का चाहे कुछ हो परन्तु वे स्वयं जीवित रहें। परन्तु इन संघर्षणों से वे स्वयं भी जीवित नहीं रह सकते। एक उदाहरण से यह बात अच्छी तरह से समझी जा सकेगी। कल्पना करो कि एक तालाब में १०० मछलियां हैं और उनमें यही बलवानों के बाक़ी रहने वाली सभ्यता प्रचलित है, फल यह होगा कि पहले सब से निर्बल मछली मारी जायगी और उसे, उससे बलवती मछलियां हज़म कर लेंगी। अब जो इसके बाद सब से कमज़ोर मछली रह गई है उसकी बारी आवेगी और वह भी इसी प्रकार से। फिर कमज़ोर मछली रह गई है उसकी बारी आवेगी और वह भी इसी प्रकार से मौत के घाट उतरेगी। इसी क्रम को जारी रखने का फल यह होगा कि अंत की सब से बड़ी और शक्ति शालिनी मछली बाक़ी रह जायगी। बाक़ी सब उपर्युक्त भांति एक दूसरे का ग्रास बनती रहेंगी। परन्तु अब प्रश्न यह है कि क्या उस तालाब में यह अन्तिम मछली जीती जागती बाक़ी रहेगी? कदापि नहीं; यह इस लिये मर जायगी कि अब उसके लिये खाने को कोई मछली बाक़ी नहीं रही क्योंकि उस का अभ्यास मछलियों ही के खाने का बन चुका था। अब सोचना यह है कि यह तालाब क्यों मछलियों से ख़ाली हो गया? उत्तर स्पष्ट है कि उपर्युक्त अर्ध सचाई ने इस तालाब की मछलियों का सफ़ाया कर दिया। यदि यौरुप ने इस अर्ध सचाई को न छोड़ा तो उसका भी तालाब की मछलियों की तरह से सफाया हो जावेगा। असली सचाई जिस से

मनुष्य समाज का अंग विशेष नहीं अपितु सभी अंग जीवित रहें वह है कि सब के जीवित रखने के लिये निस्वार्थ होकर प्रयत्नवान् होना"।[1] वर्गवाद ने जो श्रेणी संघर्ष का नियम बना रखा है वह भी इस सुनहरे नियम के विरुद्ध है।

---

(1) आर्यसमाज के १० नियमों में से नवां नियम यह है कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए अपितु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये"।

बारहवां अध्याय

"वैदिकशिक्षा"

आदर्श समाज किस प्रकार बन सकता है ?

भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रारंभ जगत् के प्रारंभ से ही होता है। जिस समय देश अनेक जातियों में विभक्त नहीं थे अपितु समस्त संसार एक ही जाति के रूप में था, संसार की एक मात्र (मनुष्य) जाति किस प्रकार शांति के साथ रहती हुई फूली और फली, इस के लिये भारतीय सभ्यता का मूल नियम (बुनियादी उसूल) यह था कि "सब मनुष्य (बिला लिहाज़ रंग, जाति, और नस्ल के) भाई भाई हैं, उनमें कोई छोटा नहीं कोई बड़ा नहीं। वे सब मिलकर सौभाग्य की वृद्धि के लिये उन्नत शील हों, उन सब का पिता शक्ति संपन्न सर्वरक्षक और सब को मर्यादा में रखने वाला परमेश्वर और अनेक प्रकार के धन धान्य देने वाली पृथिवी उनकी माता है।[1] भाव इसका यह है कि समस्त पृथिवी निवासी एक विशाल परिवार के रूप में हैं, जिनमें न कोई छोटा है न कोई बड़ा; सब भाई भाई हैं। इस भ्रातृभाव को स्थिर रखने के लिये आवश्यक है कि वे समझें कि वे एक माता और पिता के पुत्र

(1) अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सभ्रातरो वावृधुः सौभागाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृथिवी सुदिना मरुद्भ्यः॥ (ऋग्वेद ५।६०।५)

हैं। आस्तिकवाद की अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता यही है कि उसके द्वारा सब को एक पिता का पुत्र समझ कर भाई भाई के पारस्परिक संबन्ध की स्थापना होती है। वेदों में यह उच्चभाव जगह जगह मिलते हैं। एक और जगह वर्णितहै कि करशफ = निर्बल और विशफ = प्रबल (दोनों) का, प्रकाश पुंज (परमात्मा) पिता और पृथिवी (उनकी) माता है। (ऐसा समझते हुये) विद्वानों ने (पुरुषार्थ करने का) जैसा चक्र चलाया है उसे फिर फिर काम में लाओ।[1] फिर एक जगह पारस्परिक प्रेम की स्थापना के लिये कहा गया है:—"जो कोई संपूर्ण चराचर जगत् को परमात्मा ही में देखता है और समस्त जगत् में परमेश्वर को देखता है। इससे वह निन्दित नहीं होता।[2] यह शिक्षा कितना महत्व रखती है। जब मनुष्य अपने प्यारे प्रभू को समस्त प्राणियों में (व्यापक) देखता है तब प्रत्येक प्राणी के शरीर उसके लिये ईश्वर के मन्दिर के रूप में होते हैं। भला कौन है जो अपने प्यारे के मन्दिर को स्वयमेव तोड़े और फोड़े।[3] इस शिक्षा से मनुष्यों में यह भावना पैदा होती है कि

---

(२) करशफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता।
यथाभिचक्र देवांस्तथापकृणुता पुनः॥ (अथर्ववेद ३।९।२)

(३) यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥(यजुर्वेद ४०।६)

(४) अपने प्रियतम का मन्दिर कितना प्यारा होता है, इसको प्रकट करने के लिये एक उर्दू के कवि ने लिखा है:—

न जाऊंगा कभी जन्नत में मैं न जाऊंगा।
अगर न होवेगा नक़शा तुम्हारे घर का सा॥

अर्थात् प्रेमी जन्नत स्वर्ग से अपने प्रियतम के घर को तरजीह देता है।

किसी भी प्राणी को तकलीफ़ नहीं देनी चाहिये। इसी प्राणियों के प्रेम को लक्ष्य में रखते हुये एक अमरीकन विद्वान् ने लिखा है—"बड़ी चरचा शत्रु को कुचल देने और बरलन तथा टोक्यो की ओर चलने और बिना किसी शर्त के आत्म समर्पण की बात कही जा रही है परन्तु एक रत्ती भर भी बात दया और माफ़ी की नहीं कही जाती है। हम पाश्चात्यों में इस का अभाव ही है। बल, हिंसा, बदला लेने की इच्छा अहम्मन्यता, घमंड और अधिकार, इससे हम ख़ूब परिचित हैं। और इनको हमने दूसरों में भी रोग की तरह फैलाया है जो उनके हमारे अनुकरण करने से प्रकट हैं। (जापान को देखो) परन्तु दया, अनुकम्पा, प्रेम, नम्रता, आत्म त्याग और शांति, इन्हें हम बहुत थोड़ा जानते हैं। और ये अन्तिम सिद्धांत ही, पहले नहीं, संसार को मौत से बचा सकते हैं। कौन (इस बात से) दुखी हो सकता है कि अब तुला दंड पश्चिम से पूर्व की ओर झुक रहा है। पश्चिमी राज्य अपने पापों से नष्ट भ्रष्ट होंगे और चीन और हिन्दुस्तान मनुष्यों के अंतिम ध्येय प्राप्त कराने का भार अपने ऊपर लेने की तय्यारी करते हैं।[1]

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि भारतीय सभ्यता के मौलिक नियमों को पश्चिमी विद्वान् वर्तमान युद्ध (१९४५) की बरबादी को देखकर; अपनाने के लिये तय्यार हो रहे हैं। सार्वदेशिक प्रेम और भ्रातृभाव के अपनाये बिना दुनियां शांति की जगह नहीं बन सकती।

---

(1) देखो Unity in Aryamitra 30—9—43.

२५-४-४५ को हुई सैन फ्रान्सिस्को कान्फ्रेन्स भी, इस जरूरत को प्रकट करती है कि संसार का संगठन बनाये बिना शांति की स्थापना नहीं हो सकती। "ओलूफ स्टेपलेंडन" (Olaf Staplendon) ने एक नाविल लिखकर आगे के एक हज़ार वर्ष का हाल लिखा है। "ऐल्डस हक्सले" (Aldous Huxley) ने अपने एक ग्रन्थ में विश्व की शांति का वर्णन किया है। [1] "कामश्री किले मेरियन" एक फ्रेंच ज्योतिषी ने अपनी ज्योतिष के हिसाब से बतलाया है कि सन् २३५० ई० में संसार में पूर्णतया शांति की स्थापना हो जायगी। उस समय एक नस्ल, एक जाति और एक ही धर्म हो जायेगा।

एच० जी० वैल्स और संसार की शान्ति

(२) पुराने जातीय संघ (League of Nations) के मन्त्रीमंडल के मुख्य मन्त्री डाक्टर फिलिप रैबन ने १६४० से २१०६ तक के हालत की एक स्वप्न पुस्तक लिखी थी। [2] एच. जी. वैल्स ने उसी के आधार पर एक पुस्तक लिखकर उसमें सनवार उपर्युक्त काल का विवरण दिया है। [3] उसका अत्यन्त संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

---

(1) Study of a brave New world by Ardous Huxlay.

(2) Dream Book by Doctor Philip Raven.

(3) The Shape of things to come by H. G. Wells.

१९४० से १९५० तक लड़ाई जारी रहेगी।[1]

१९५० से १९६० तक आवागमनसंघ (Transport Union) बनेगा और व्यापार आकाश और समुद्र के द्वारा उसी की अनुमति से होगा।

१९६५ ई० में उस संघ के ये कार्य होंगे:—(१) आकाश और समुद्र का नियंत्रण (२) सामग्री संग्रह (Supply) (३) व्यापार (४) शिक्षा नियंत्रण (५) विज्ञापन नियंत्रण (६) अन्य आवश्यक नियंत्रण।

१९७३ ई० में बसरे में एक सम्मेलन होकर यह संघ दुनियां की सब से बड़ी (Supreme) गवर्नमेंट ठहराया जायगा।

१९७८—२०५९ तक—कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में विचार होता रहेगा।

२०५९ ई० में मजोकी में एक और कांफ्रेन्स हो कर संसार की राज्य-प्रणाली को और रूप दिया जायगा।

२१०६ ई० में संसार के राज्य का राजा प्रधान (King President) की नियुक्ति होकर शांति हो जावेगी।

यह है वह विवरण जो वैल्स महोदय ने भावी संसार का दिया है। डैवीस ने एक पुस्तक में लिखा है कि भविष्य में जगत् का हाल क्या होगा :—

कुछ एक और इसी प्रकार के मत

(1) डाक्टर रैबिन का ग्रन्थ इस लड़ाई के शुरु होने से पहले लिखा गया था। लड़ाई के शुरु होने के सम्बन्ध में उसकी पेशीन गोई पूरी हो गई। देखें समाप्ति के सम्बन्ध में पूरी होती है या नहीं। (लेखक)

१९९० ई० में मजदूरों के काम के केवल ३ घण्टे रह जावेंगे।

१९७५ ई० में स्त्री पुरुष सङ्गम के विचार (Sexual feeling) जाते रहेंगे।

१९८५ ई० में जुर्म करना बीमारी समझी जाने लगेगी और लोग उससे उस तरह बचना चाहेंगे जैसे रोग से बचने की इच्छा किया करते हैं।

२००० ई० में यह बीमारी जाती रहेगी और जगत् निर्दोष हो जावेगा। तब सन्तति निग्रह होगा और राज्य की ओर से यत्न किया जावेगा कि नियत संख्या से अधिक आबादी न होने पावे—उस समय इङ्गलैंड की आबादी $\frac{1}{10}$ रह जायगी और कंज़रवेटिव इज्म समाप्त हो जावेगा।

४००० ई० में एक ही जाति रह जावेगी।[1]

रैवन, वैल्स और डैवीस आदियों की उपर्युक्त पेशीन गोइयाँ

परिणाम

ठीक सिद्ध हों या न हों परन्तु एक बात जो इन सब की तह में पाई जाती है वह यह है कि इन सब का निष्कर्ष वही है जो भारतीय संस्कृति और सभ्यता का मूल है अर्थात् समस्त संसार भ्रातृभाव की लड़ी में पिरोया जावे।

ऊपर का विवरण प्रकट करता है कि संसार के विचारकों की

आदर्श समाज बनाने के लिए दो बातों का स्वीकार करना आवश्यक है

इच्छा जरूर आदर्श समाज बनाने की है वह समाज किस प्रकार बने? इस के लिए दो नियमों का स्वीकार कर लेना अनिवार्य है :—(१) पृथ्वी के विशाल समाज में मतभेद होना आवश्यक है।

---

(1) History of the future by J.L. Devies.

यह नियम वेद में इस प्रकार स्वीकार किया गया है कि "मनुष्य के दोनों हाथ बराबर शक्ति वाले नहीं होते, एक गाय की दो बछियायें बराबर दूध देने वाली नहीं होतीं, एक माता के दो पुत्र जो एक साथ ही उत्पन्न होते हैं बराबर शक्ति वाले नहीं होते और एक समाज के एक ही स्टेटस के दो व्यक्ति बराबर दान नहीं देते।[1]

प्रकृति में जब तक उसके तीनों गुण (भाग) समता वाले रहा करते हैं तब तक प्रलय रहा करती है। जब उनमें विषमता आती है तभी जगत् बना करता है। जब यह जगत् बना ही विषमता से है तो इसके भीतर विषमता रहना स्वाभाविक है। समाजों में जो बहु पक्ष और अल्प पक्ष हुआ करते हैं वे भी मनुष्यों के भिन्न भिन्न मत होने की बात प्रकट करते हैं। अस्तु इस प्रकार मतभेद होने की सूरत में क्या करना चाहिए ? इस सम्बन्ध में वेद की शिक्षा यह है कि "पृथ्वी (कब) मनुष्यों की रक्षा करती है (जब वे) अनेक भाषाओं और अनेक धर्मों के होने पर भी (इस पृथ्वी पर इस प्रकार से मिल कर रहा करते हैं। जैसे) एक घर में घर वाले मिल कर रहा करते हैं। उस समय पृथ्वी धन की सहस्रों धारा उसी प्रकार से दिया करती हैं जैसे गायें निश्चित रीति से दूध की अनेक धाराएँ दिया करती हैं।[2]

---

(1) समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः, संमातरा चिन्न समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि, ज्ञाती चित्सन्तौ नं समं पृणीतः॥
(ऋग्वेद १०—२२७—९)

(2) जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसे नानाधर्माण पृथिवी यथौकसम्। सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥
अथर्ववेद १२।१।४२

और भी अनेक बातें संसार में विभिन्नता की हुआ करती है परन्तु मुख्य रीति से भाषा और धर्मों—कर्तव्यों के भेद ही हुआ करते हैं। यहां एक बात याद रखनी चाहिए कि वैदिक साहित्य में धर्म मज़हब या रिलीजन के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ करता अपितु सदैव कर्तव्य के अर्थ में आया करता है। यहां भी इस दूसरे नियम में धर्म कर्तव्य ही के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

संसार का इतिहास प्रकट करता है कि जब भी मनुष्य मिल कर नहीं रहे तभी देश का पतन और समाज में अशान्ति हुआ करती है। राम-रावण, कृष्ण-कंस, कौरव-पांडव, पृथ्वीराज-जयचन्द, अलाउल हसन-जहांसोज़ और ग़ज़नी के उदाहरण हमारे सामने हैं। अमरीका में वहां के गोरों और नैग्रों में अशान्ति का हेतु मिलकर रहने की अनिच्छा ही है। योरुप में नैपोलियन नैलसन, कैसर, हिटलर, मसोलिनी और चर्चिल आदि में युद्ध कारण भी मनुष्यत्व का अभाव ही है।

प्रारम्भ में एक ही मनुष्य-जाति थी

बृहदरण्यकोपनिषद में, जो वेद के बाद सब से प्राचीन ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण का एक भाग है, एक जगह इस प्रकार लिखा हुआ मिलता है:—"प्रारम्भ में एक ब्राह्मण वर्ण ही था। जब वह वर्ण एक होने से वृद्धि को न प्राप्त हुआ तब उसने श्रेय रूप क्षत्रि वर्ण को बनाया परन्तु वह (ब्राह्मण वर्ण क्षत्रिय वर्ण को बनाकर भी) उन्नत न हो सका तब उसने वैश्य वर्ण बनाया वह तब भी वृद्धि न कर सका तब शूद्र वर्ण को बनाया" इत्यादि।[1]

(1) बृहदारण्यकोपनिषद पहला अध्याय; चौथा ब्राह्मण कंडिका १० से १३ तक।

(२) इसी प्रकार महाभारत में भी एक जगह लिखा है कि भीम ने युधिष्ठिर से कहा कि "प्रारम्भ में इस विश्व में एक ही वर्ण था, कर्म और क्रिया विभेद से चार वर्ण हो गए"[1]

(३) इसी प्रकार से भागवत में भी एक जगह लिखा मिलता है कि "पूर्व में एक ही वेद और सब वाङ्मय में व्यापने वाला प्रणव—ओंकार और एक ही देव नारायण और एक ही अग्नि तेजस्वी वर्ण था।"[2]

(४) इस प्रकार समस्त वैदिक साहित्य में आमतौर से और उस के बाद के साहित्य में कहीं २ यह बात खुले शब्दों में अंकित मिलती है कि इस पृथिवी पर प्रारम्भ में एक ही (आर्य) जाति थी। और उसी के लिए ऊपर कहा जा चुका है कि उन में न कोई बड़ा था न छोटा, वे सब भाई भाई ही थे। अस्तु, यह जाति किस प्रकार राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति कर सके इस के लिए वैदिक साहित्य की शिक्षाओं को लक्ष्य में रखते हुए इस जाति के तत्कालीन नेताओं ने आश्रम और वर्ण की रचना की। चार आश्रम और चार ही वर्ण हैं। उनका यहाँ संक्षिप्त विवरण दिया जाता है :—

आश्रम व्यवस्था

मनुष्य का जीवन चार वैज्ञानिक विभागों में बांटा गया है। जिनको चार आश्रम कहते हैं। (१) ब्रह्मचर्या-श्रम = विद्यार्थी जीवन, (२) गृहस्थाश्रम = परिवारिक जीवन, (३) वानप्रस्थाश्रम =

---

(1) एकवर्णमिदंपूर्व विश्वमासीद्युधिष्ठिर। कर्मक्रिया विभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम्॥ (महाभारत शान्ति पर्व)

(2) भागवत स्कन्ध ६।१४

तपस्या और अपने को पवित्र, सहनशील और कठोरताओं के सहने योग्य बनाने का जीवन और (४) संन्यासाश्रम (Spritual anchrite)=संसार की सेवा Honorary public works और आत्म निरीक्षण करनी मोक्ष=अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ स्वतंत्रता प्राप्त करने का जीवन। यह वैज्ञानिक सोसलइज्म, मनुष्य को नियमबद्ध, गौरवास्पद, पवित्र बनाते हुये इस योग्य बना देता है कि वह सब कुछ ईश्वरार्पण करदे। इनमें से पहला आश्रम, मनुष्य जीवन के चार उद्देश्यों धर्म, अर्थ. काम और मोक्ष में धर्म के आचरण में लाने योग्य बनाता है।

धर्म के वास्तविक अर्थ

वैदिक साहित्य के न जानने वाले केवल अंग्रेज़ी पढ़े लिखे यौरोपियन और उन्हीं का अनुकरण करने वाले कुछ एक देशी लोग, जिन्हें उचित रीति से सरजान वुडरफ़ ने "इंगलैंड के मस्तिष्क की सन्तति" (Mindborn Sons of England) कहा है, धर्म शब्द को मज़हब या रिलीजन का पर्याय कहा करते हैं। यह उनकी भारी भूल है। मज़हब के अर्थ रास्ते के हैं। रिलीजन वह शब्द लैटिन भाषा के (Religes) शब्द से बनाया गया है इसके अर्थ एक जगह ध्यान रखने (To care) और दूसरी जगह (Bind togather) इकट्ठा करके बांधने के मिलते हैं। ग्रीक भाषा के शब्द alogo के अर्थ जो इस शब्द से संबंधित हैं, (To head) ध्यान देने ही के हैं धर्म शब्द इन दोनों से सर्वथा भिन्न है इसका एक अर्थ तो यह है:—

(१) धारणा करने से धर्म बना है, ऐसा कहा जाता है क्योंकि कि प्रजा इसे धारण करती है इसलिये जो धारण से संयुक्त हैं,

निश्चित रीति से वही धर्म है।[1] भाव इसका यह है कि मनुष्य के लिये जिन कर्तव्यों का धारण करना अनिवार्य है उन्हीं का नाम धर्म है। इसीलिये एक जगह कहा गया है कि रक्षा किया हुआ धर्म अर्थात् कर्तव्य के पालन करने वाले की धर्म रक्षा करता है और जो धर्म का हनन करते अर्थात् अपने कर्तव्य कर्मों का पालन नहीं करते उनको धर्म मार दिया करता है।[2] जब मनुष्य अपने कर्तव्यों का पालन करता है तो उसे सफलता का जीवन प्राप्त होता है परन्तु कर्तव्य कर्म के पालन करने में अवहेलना करने से आवश्यक है कि उसे नष्ट होना पड़ेगा।

(२) वैशेषिककार ने लोक और परलोक दोनों में उन्नत होने से, किसी व्यक्ति को धर्माचरण करने वाला समझा है।[3] (३) मनु ने धर्म को १० लक्षण वाला कहा है।[4] अर्थात् धृति= दृढ़ता के साथ कर्तव्य का पालन करना, (२) क्षमा—दंड देने की योग्यता रखते हुये भी माफ कर देना क्षमा कहलाता है, (३) दम= मन का निग्रह, (४) अस्तेय=चोरी न करना, (५) शौच=पवित्रता, (६) इन्द्रियनिग्रह, (७) धी=बुद्धि को उत्कृष्ट बनाना, (८) विद्या= ज्ञान प्राप्त करना, (९) सत्य, (१०) अक्रोध। अस्तु, वैदिक

---

(1) धारणात्धर्ममित्याहुः कस्माद् धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥
महाभारत कर्ण पर्व ६६।६५ तथा शांतिपर्व १०६।१२

(2) धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षतः (मनुस्मृति)

(3) यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। (वैशेषिकदर्शन १।२

(4) धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ (मनुस्मृति ६।६२

साहित्य में धर्म का यह रूप है। इसकी मज़हब या रिलीजन के साथ तुलना करना अपने को भ्रान्ति में डालना है। यह धर्म है जिसके आचरण में लाने की योग्यता पहले (ब्रह्मचर्य) आश्रम में मनुष्य प्राप्त किया करता है।

इस दूसरे आश्रम में, उन चार जीवनोद्देश्यों में से, "अर्थ और काम" की पूर्ति, मनुष्य किया करता है अर्थात् धर्म पूर्वक धनोपार्जन करना और धर्म पूर्वक ही विवाह करके सन्तान पैदा करना।

गृहस्थाश्रम

इन आश्रमों में, मनुष्य, जीवनोद्देश्य की चार बातों में से, अन्तिम मोक्ष प्राप्ति के साधनों को काम में लाता है वानप्रस्थ, जनता की सेवा शिक्षा के द्वारा किया करता है। बिना किसी प्रकार के फ़ीस और बिना किसी प्रकार का दूसरा टैक्स वसूल किये, विद्यार्थियों को अपने संपर्क में रखकर शिक्षा दिया करता है। जिससे विद्यार्थियों के विचार और आचार दोनों ठीक हो सकें। संन्यासी देखता है कि तीनों आश्रम वाले अपने अपने कर्तव्यों का ठीक रीति से पालन करते हैं।

वानप्रस्थ और सन्यस्थ आश्रम

इन चार आश्रमों में से तीन आश्रम ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्सास आश्रम वाले धन नहीं पैदा कर सकते इनके प्रत्येक कार्य निष्काम, केवल कर्तव्य के पालन करने और सेवा के उद्देश्य से हुआ करते हैं। इन आश्रम वालों को धनोपार्जन के उद्देश्य से किसी प्रकार का कोई पेशा करना निषिद्ध ठहराया गया है। केवल एक आश्रम गृहस्थ है जिसमें धनोपार्जन

आश्रम और धनोपार्जन की मर्यादा

करने का आदेश दिया गया है, वह किस प्रकार धन पैदा करता है इसके लिये चार वर्ण नियत किये गये हैं।

आश्रम व्यवस्था पर विचार करने से प्रकट होता है कि

गृहस्थ आश्रम के चार भेद

गृहस्थाश्रम के चार भेद किये गये हैं जिनको ४ वर्ण कहते हैं उनका यह विभाग धनोपार्जन प्रकार अथवा वृत्ति पर निर्भर है। इसका स्पष्टीकरण वर्णों के कर्तव्य पर विचार करने से हो जाता है—

वर्णों के कर्तव्य

मनुस्मृति के अनुसार चारों वर्णों के कर्तव्य इस प्रकार हैं।

(मनु० १।८८-९१)

संख्या	वर्ण	लोक सम्बंधी कर्तव्य जीविका की उपलब्धि के लिये	परलोक सम्बन्धी कर्म
१	ब्राह्मण	१—वेद पढ़ाना २—यज्ञ कराना ३—दान लेना	१—वेद पढ़ना २—यज्ञ करना ३—दान देना
२	क्षत्रिय	राज्य सम्बन्धी सेवा, जिसमें देश की रक्षा आदि सभी कार्य शामिल हैं।	,, ,,
३	वैश्य	कृषि, व्यापार, पशुरक्षा आदि	,, ,,
४	शूद्र	शारीरिक परिश्रम सम्बन्धी कार्य जिसमें वे समस्त पेशे शामिल हैं जो शारीरिक परिश्रम से किये जाते हैं।	,, ,,

इन विभागों पर दृष्टि डालने से साफ़ जाहिर हो जाता है कि परलोक (ईश्वर प्राप्ति या आत्मोन्नति) सम्बन्धी कार्य्य मनुष्य मात्र के लिये एक ही प्रकार के हैं उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। भेद केवल धनोपार्जन करने की विधियों में है। अर्थात ब्राह्मण अध्यापनादि कार्य्य करके अपने निर्वाह योग्य धनोत्पन्न करता है, क्षत्रिय राज्य सम्बन्धी कार्य्य करके, वैश्य केवल अपने निर्वाह के योग्य ही नहीं अपितु उससे अधिक धन पैदा करता है जिससे राष्ट्र के भी काम चल सकें और देश धन धान्य से हराभरा रहे।

शूद्र को शारीरिक परिश्रम से प्रायः प्राप्त ही उतना धन हुआ करता है जितना उसके निर्वाह के लिये आवश्यक होता है।

वर्णभेद जन्मपरक नहीं

पहिले तीसरे और चौथे आश्रमस्थ नर नारियों का कोई वर्ण नहीं होता, इस लिये कि उनके लिये धनोपार्जनार्थ कोई पेशा करना निषिद्ध है। केवल एक दूसरा आश्रम गृहस्थ है जिसमें धन पैदा करना विहित है। वर्ण वृत्ति पर ही निर्भर होता है जैसा कि कहा जा चुका है।

वर्ण का निश्चय कब होता है

ब्रह्मचर्य को समाप्त करके जब ब्रह्मचारी गुरुकुल से वापिस हुआ करता था तब वापिस होने से पहिले उसका वर्ण आचार्य द्वारा निश्चय हुआ करता था * ब्रह्मचर्य की कम से कम अवधि

---

* आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः। उत्पादयति सावित्र्या नित्या साजरामरा॥ मनुस्मृति॥ अर्थात् वेदज्ञ आचार्य इस ब्रह्मचारी की जो जाति (वर्ण) विधिपूर्वक सावित्री द्वारा बनाता है वही अजर और अमर है॥

२४ वर्ष की नियत है। अतः स्पष्ट है कि २४ वें वर्ष की समाप्ति अथवा २५ वें वर्ष के प्रारम्भ में वर्ण का निश्चय हुआ करता था कि वह ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र किस वर्ण के कार्य पूर्ति के योग्य हुआ। उससे पहिले उसका कोई वर्ण नहीं होता और न हो सकता था। जब वर्ण का प्रारम्भ, कम से कम २४ वें वर्ष में हुआ करता है तब उस को जन्म से कहने या मानने के लिये, यही कहा जा सकता है, कि ऐसा करने वाले, वर्ण की मर्यादा को या तो जानते नहीं, यदि जानते है तो जान बूझ कर वास्तविकता के विरुद्ध कहते हैं। गीता में भी कृष्ण महाराज ने, वर्णों की रचना गुण और कर्मों ही से हुआ करती है, ऐसा ही माना है +।

इन वर्णों को गृहस्थाश्रम के चार भेद ही समझना चाहिये इससे अधिक न इन का कोई महत्व है और न अन्य आश्रमों से सम्बन्ध।

प्रत्येक वर्ण की श्रेष्ठता।

ब्राह्मण की श्रेष्ठता ज्ञान का भण्डार होने से होती है। क्षत्रिय की श्रेष्ठता अन्य वर्णों की अपेक्षा अधिक बल का पुंज होने से जो वस्तुयें विभन्न श्रेणी की होती हैं उनमें दरजों का भेद नहीं हुआ करता। यह बात प्रकट है उदाहरणों के समझी जा सकती है। कल्पना करो एक घड़ी है और दूसरी मेज़ है तो ये दोनों चीज़ें विभन्न श्रेणी की हैं इसलिये इनमें यह प्रश्न नहीं उठ सकता कि घड़ी अच्छी है अथवा मेज़। हां १० घड़ियों में यह पूछा जा सकता है कि इनमें कौन सी घड़ी श्रेष्ठ है, अथवा १० मेज़ों में भी यह प्रश्न हो सकता है कि सबसे अच्छी मेज़ कौनसी है क्योंकि १० घड़ियां अथवा १० मेज़ें एक एक श्रेणी की ही वस्तुएं हैं।

+ चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (गीता)

है। कृषि व्यापार आदि में वैश्य की श्रेष्ठता है। शारीरिक परिश्रम करने में शूद्र अन्य तीनों वर्णों से श्रेष्ठ हुआ करता है इस प्रकार प्रत्येक वर्ण अपने निपुणता पूर्ण गुणों से श्रेष्ठ और अन्यों के गुणों की अपेक्षा अल्पज्ञ होने से, अन्यों से अश्रेष्ठ हुआ करता है।

वर्णों में छुटाई बड़ाई नहीं हो सकती।

कौन वस्तु किस से बड़ी और कौन किस से छोटी हुआ करती है, इस छुटाई बड़ाई की नाप तोल एक श्रेणी के भीतर होने वाली वस्तुओं में हुआ करती है। इस बात को समझने के लिये आवश्यक है कि यह समझ लिया जावे कि वस्तुओं में दो प्रकार से भेद हुआ करते हैं:—(१) एक श्रेणी (Kind) का भेद, (२) दूसरा दर्जों (Degrees) का भेद। जो वस्तुएं एक श्रेणी की हुआ करती हैं उन में दरजों का भेद होता और हो सकता है परन्तु इसीप्रकार चारों वर्ण, प्रकार की दृष्टि से, चार भिन्न प्रकार (श्रेणियों) की चीज़ें हैं इसलिये यह प्रश्न नहीं उठ सकता कि ब्राह्मण बड़ा है या क्षत्री, या क्षत्री बड़ा है या वैश्य इत्यादि—हां, अवश्य दस ब्राह्मणो, दस क्षत्रियों इत्यादि में यह पूछा जा सकता है कि उन दसों में कौन ब्राह्मण अथवा दूसरे दस क्षत्रियो में कौन क्षत्री श्रेष्ठ है क्योंकि दस ब्राह्मण या दस क्षत्री पृथक् पृथक् एक ही श्रेणी की वस्तुएं हैं।

वर्तमान भेद का कारण

यहां स्वभाविक रीति से यह प्रश्न उठ सकता है कि फिर वर्तमान काल में वर्णों के भीतर छुटाई बड़ाई का भेद कैसे कहा जाया करता है? इसका उत्तर यह है कि वेद के बाद जो ग्रन्थ स्मृति और गृह्य सूत्रादि लिखे गये हैं उनके द्वारा वर्णों के भीतर छुटाई बड़ाई

का भेद समाविष्ट हुआ और उसका कारण वेद की शिक्षाओं का तिरोहित होना ही कहा जा सकता है। वर्तमान मनुस्मृति आदि स्मृतियों और आश्वलायनादि गृह्य सूत्रों में अनेक बातें, ऐसी हैं जिनका समर्थन वेद द्वारा नहीं हो सकता, यहां उनके उदाहरण देने की ज़रूरत नहीं है। उन्हीं अवैदिक बातों में से एक बात यह भी है कि क्रमश: एक वर्ण दूसरे से बड़ा है। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में भी जहां कहीं वर्णों के भीतर छुटाई बड़ाई का भाव प्रदर्शित होता है वह इन्हीं ग्रन्थों के मतानुकूल वर्णित हुआ है। वेद में जो शरीर की उपमा से वर्णों का वर्णन हुआ है और जिसमें ब्राह्मण को शिर-स्थानी क्षत्री को बाहु और वक्षस्थानी वैश्य और शूद्र को उदर तथा पाद स्थानी कहा गया है, उनमें छुटाई बड़ाई का कोई भाव नहीं हैं क्योंकि शरीर के प्रत्येक इन अवयवों शिर और बाहु आदि में श्रेणी का भेद है। प्रत्येक वर्ण अपने कार्य क्षेत्र में सर्व श्रेष्ठ और अन्य उसकी अपेक्षा से गौण हुआ करते हैं जैसा कि कहा जा चुका है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ण अपने स्थान में उत्तम और अन्यों की अपेक्षा अन्य वर्ण वहां गौण हुआ करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक वर्ण में सद्भाव और मेल का रहना, वेद की शिक्षा के अनुकूल है

वैदिकसाम्यवाद की विशेषता।

इस (वैदिक) साम्यवाद की विशेषता यह है कि इसमें समता का विधान उन्नति करने का अवसर प्राप्त करने में किया गया है फल प्राप्ति में नहीं, फल तो प्रत्येक व्यक्ति अपने पुरुषार्थ के अनुकूल ही प्राप्त किया करता है। परन्तु उन्नति का अवसर सबको एक जैसा प्राप्त होना चाहिये। प्रत्येक वर्ण में उत्पन्न हुये बालक गुरु-

कुलों में चले जाया करते थे और वहां प्रत्येक को शिक्षा प्राप्ति का एक जैसा अवसर प्राप्त होता था। उस अवसर से लाभ उठाकर कोई भी शूद्र वर्ण में उत्पन्न हुआ बालक अपने को ब्राह्मण वर्ण के कर्तव्यों के पालन करने के योग्य बना सकता था और बना लेने पर आचार्य उसको ब्राह्मण वर्ण ही निश्चय कर दिया करता था। इसी प्रकार ब्रह्मणादि वर्णों में उत्पन्न हुए बालक अन्य वर्ण के योग्य अपने गुण कर्मानुसार बन जाया करते थे। इस प्रकार उन्नति का द्वार प्रत्येक के लिये खुला होता था। उन्नति या अवनति करना उसके अपने अधिकार में हुआ करता था।

जिस प्रकार एक परिवार में माता और पिता के सभी पुत्रों (प्रत्येक भाई) को एक प्रकार का अवसर उन्नति करके आगे बढ़ने का प्राप्त हुआ करता है इसी प्रकार संसार के प्रत्येक पुरुष और स्त्री को प्राप्त है। उनका कर्त्तव्य है कि पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत करते हुये सभी उन्नति करें और आगे बढ़ें। यदि कोई उनमें से आलस्य और प्रमाद करता है तो आवश्यक है कि वह अन्यों से पीछे हो जायगा जो पुरुषार्थ मय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

वैदिकसाम्यवाद की समता

वैदिक साम्य वाद की समता, पुरुषार्थ का अवसर प्राप्त होने और कार्मिक जीवन व्यतीत करने में है, फल प्राप्ति में नहीं। फल तो प्रत्येक मनुष्य को, उसके कर्मानुसार ही, मिला करता है। जैसा कि कहा जा चुका है कोई यदि चाहे कि कुछ न करके, संसार के धन धान्य में, बराबर का साझी बन जाय, जैसा कि कई बेसमझ आदमी, समझ लिया करते हैं, तो उन्हें समझ लेना चाहिये कि वे मूर्खों के स्वर्ग का स्वप्न देख रहे हैं। पं० जवाहर लाल नेहरू,

जो इस देश में आधुनिक वर्गवाद के सबसे बड़े नेता समझे जाते हैं, वे भी पुरुषार्थ करने के अवसर प्राप्ति ही का समर्थन करते हैं।

एक जगह उन्होंने लिखा है कि "यह बात किसी ने नहीं कही जैसा कि पायोनियर के एक लेख से प्रतीत होता है कि सब मनुष्य शारीरिक या मानसिक दृष्टि कोण से बराबर हैं या सभी जातियों में इसी प्रकार की समता स्थित है अपितु जो कुछ कहा गया और जिसे बुद्धिमानों का अधिकांश भाग स्वीकार करता है, वह यह है कि सभी मनुष्यों को (उन्नति का) अवसर प्राप्ति में समता होनी चाहिये। वर्तमान पूंजीवाद में यह अवसर न प्राप्त है और न हो सकता है।"*

इस समता का रूप वैदिक साम्यवाद में क्या है ?

वैदिक साम्यवाद में उपर्युक्त समता किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ? उसके साधनों का रूप आश्रम और वर्ण व्यवस्था में

---

* पं० जवाहर लाल के शब्द ये हैं :—No one has said, as the Pioneer article seems to imagine that all men are physically or mentally equal, or that all nations are similarly situated. What has been said, & what is admitted by the great majority of intelligent men, is that all human being should have an equality of opportunity. The present Capitalist System does not & can-not in the nature of things provide this equality of opportunity.

(The Hindustan Times 21. 11. 33.)

विदित है। मनुष्य को, जब से वह होश संभाल कर काम करने के योग्य हुआ करता है उस समय से लेकर अंत समय पर्यन्त जो कुछ वह करता या कर सकता है उस सब का एक समष्टि नाम आश्रम और वर्ण है। वर्ण और आश्रम की वैदिक मर्यादा के समझ लेने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

इस आश्रम और वर्ण व्यवस्था की एक विशेषता

आश्रम और वर्ण व्यवस्था का जो रूप ऊपर दिया गया है कि उनमें सहयोग रहना अनिवार्य है। एक ब्रह्मचारी को शिक्षा वानप्रस्थ और सन्यासी देता है और भोजन गृहस्थ तो कैसे सम्भव है कि एक ब्रह्मचारी अन्य आश्रम वालों से ईर्ष्या या द्वेष रखे। इसी प्रकार जो उसे भोजन देता है अथवा शिक्षा दे तो पालक और गुरु हैं वे किस प्रकार विद्यार्थी से अप्रसन्न रहसकते हैं।

इस आश्रम व्यवस्था से प्रारंभ में विद्यार्थी के रूप में, एक व्यक्ति को ग़रीबी का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। आगे चलकर दूसरे आश्रम में धन पैदा करके वह बड़ा दौलतमन्द बन जाता है, फिर आगे चलकर, आगे के आश्रमों में उसे फिर ग़रीबी का जीवन ही व्यतीत करना पड़ता है। यह प्रथा है जो मनुष्य को न तो मौरूसी अमीर बनने देती है और न मौरूसी ग़रीब। फिर पश्चिमी देशों का सा काम और पूँजी का झगड़ा यहां किस प्रकार पैदा हो सकता है। इस व्यवस्था के रू से जो आश्रमधन पैदा करता है वह केवल अपने लिये नहीं बल्कि समस्त आश्रम वालों के लिये पैदा करता है। फिर भला उसे पूँजीपति कहकर उससे कौन झगड़ा कर सकता है?

भारतीय संस्कृति में व्यक्ति और समाज में से प्रत्येक को उत्थान का पूरा पूरा अवसर प्राप्त होता है, उन अवसरों को ऋण के नाम से पुकारा गया है। उनका विवरण इस प्रकार है:—

चार प्रकार के ऋण

(१) पितृऋण—इस ऋण का उद्देश्य जगत् की स्थिति प्रथा को जारी रखना है। जिस प्रकार माता पिता पुत्रों को उत्पन्न करके और यथा संभव अपने से योग्य बनाकर अपने स्थानापन्न के रूप में छोड़ जाते हैं, उसी प्रकार उन स्थानापन्नों का यह कर्तव्य है कि वे भी उपरोक्त प्रकार से अपने से अधिक योग्य बनाकर अपने स्थानापन्नों को छोड़ जावें, यदि छोड़ जाते हैं तो समझा जाता है कि उन्होंने अपने इस ऋण को चुका दिया। इसी को संसार में पत्नी की इच्छा और मनुष्य के चार जीवन्नोद्देश्यो में काम कहते हैं। मनुष्य को पत्नी की इच्छा नैसर्गिक है। किस प्रकार सन्तान अपने से योग्य बनाई जाती है इसके लिये भारतीय संस्कृति में एक पद्धति थी जिस का नाम संप्रति कर्म है उसका संक्षिप्त बिधान इस प्रसार है:—

जब एक गृहस्थ आगे के आश्रमों में जाने लगता था तो पुत्र से तीन प्रश्न करता था:—(१) त्वं ब्रह्म, (२) त्वं यज्ञः, (३) त्वं लोकः इसका अभिप्राय ग्रंथों में इस प्रकार अंकित है कि ब्रह्म शब्द में, जो कुछ उस गृहस्त में पढ़ा अथवा जो नहीं पढ़ सका, उस सब की एकता है। पिता का पहले प्रश्न से आशय यह होता था कि उसने जो कुछ पढ़ा है उतना तो

संप्रति कर्म

पुत्र को अवश्य पढ़ना ही चाहिये, उसके सिवा जो वह नहीं पढ़ सका उसे भी पुत्र को पढ़ना चाहिये। पुत्र "अहंब्रह्म" शब्दों से उत्तर देकर इस उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लेता था। दूसरे प्रश्न "त्वं यज्ञः" का आशय यह होता था कि जितने अच्छे कर्म उसने किए हैं उतना तो पुत्र को अवश्य करना ही चाहिये। उसके अतिरिक्त जिन अच्छे कर्मों को वह नहीं कर सका उन्हें भी उसे करना चाहिये। पुत्र "अहं यज्ञः" यह उत्तर देकर इस उत्तरदायित्व को भी स्वीकार कर लेता था। तीसरे प्रश्न "त्वं लोकः" का आशय यह होता था कि जितना लोक में मेरा यश है उतना यशस्वी तो तुम्हें होना ही चाहिये, उसके सिवा जिस यश को मैं प्राप्त नहीं कर सका उसको भी तुम्हें प्राप्त करना चाहिए। पुत्र "अहं लोकः" इन शब्दों में उत्तर देकर, इस उत्तरदायित्व को भी अपने ज़िम्मे ले लेता था। यह कर्म घर घर में होता था जिसका अवश्यंभावी परिणाम यह था कि प्रत्येक घर में पिता से पुत्र, अध्ययन, शुभ कर्म और यश प्राप्त करने में आगे निकल जाता था; यह प्रथा थी जिससे वर्तमान नस्ल से आने वाली नस्ल श्रेष्ठ होती रहती थी। [1]

दूसरा देव ऋण

"देव ऋण" यह दूसरा ऋण था। देव अग्नि, वायु, पृथिवी आदि सभी को कहते हैं। नेचर ने इनमें से प्रत्येक वस्तु को, मनुष्यों को लाभ पहुंचाने के लिये, शुद्ध रूप में उत्पन्न किया है परन्तु मनुष्य उन्हें अपने जीवन

(1) बृहदारण्यकोपनिषद पहला अध्याय पांचवा ब्राह्मण कंडिका १७ (क)

के व्यवहारों द्वारा अशुद्ध करता रहता है। मलमूत्र आदि के त्याग द्वारा अशुद्धि होती रहती है। इसलिये मनुष्यों का कर्तव्य है जितनी वे अशुद्धि फैलाते रहते हैं उतने ही शुद्धि के साधनों का भी विस्तार करते रहें। इसके विस्तार का रूप "अग्निहोत्र" है अर्थात् सुगंधि और पुष्टि कारक पदार्थों को अग्नि द्वारा जलाकर वायु, जल और पृथिवी आदि की शुद्धि करते रहना चाहिये। ऐसा करने ही से इस दूसरे ऋण से मनुष्य उऋण हुआ करता है।

ऋषियों द्वारा जो शिक्षायें मनुष्यों को मिला करती हैं।

तीसरा ऋषि ऋण

मनुष्य उनके लिये उन ऋषियों और गुरुओं आदि का ऋणी हुआ करता है उस ऋण चुकाने का प्रकार यह है कि जो शिक्षा गुरुओं द्वारा मिला करे, शिक्षा पाने वाले का, उसके लिये कर्तव्य है कि उसे कुछ एक शिक्षेच्छुओं में फैलाता रहे। जिससे जो ज्ञान दुनियां में आया है वह दुनियां से जाता न रहे क्योंकि वह दुनियां की अनमोल संपत्ति है।

शतपथ ब्राह्मण में इस ऋण की चर्चा की गई है। इस ऋण का भाव यह है कि प्रत्येक मनुष्य, भोजन, वस्त्र, औषधि आदि अपने कल्याण और जीवन की स्थिति रखने के लिये अन्यों का मुहताज़ होता है। इसलिये वह उनका ऋणी है। उस ऋण को चुकाने के लिये, प्रत्येक प्रकार से, प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक दूसरे मनुष्य की सहायता करते रहना चाहिये। यह ऋण है जिससे समाज के कार्यों में सामंजस्य रहा करता है और समाज में पारस्परिक प्रेम रखने और सहायता करने के लिये प्रत्येक

मनुष्य बाधित हुआ करता है।[1] इन ऋणों और उनके चुकाने की प्रथा पर विचार करने से यह बात साफ़ तौर से ज़ाहिर हो जाती है कि व्यक्ति और समाज दोनों को श्रेष्ठ बनाने के साधन इनमें मौजूद हैं। ये चारों ऋण, जीवनोद्देश्य के चारों प्रकरण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्धि के साधन ठहरते हैं। और आश्रम तथा वर्णों के उत्तरदायित्व की भी इन से पूर्ति होती है।

---

(1) ऋणं ह वै जायते योऽस्ति। स जायमान एव।
(१) देवेभ्यः (२) ऋषिभ्यः (३) पितृभ्यो (४) मनुष्येभ्यः॥
(शतपथब्राह्मण १।७।२।१)

तेरहवां अध्याय

"सामाजिक और आर्थिक अवस्था"

मार्क्सवाद ने श्रेणी संघर्षण को अपने वाद का एक अंग ठहराया है परन्तु यह नियम संसार की शान्ति में बाधक है। यौरुप के लोग इतने निकृष्ट स्वार्थी और मनुष्यत्व के गुणों से हीन होते हैं कि वे किसी वाद को संसार की शांति अशांति अथवा मनुष्यत्व की दृष्टि से देखना जानते ही नहीं। इनका सदैव उद्देश्य केवल अपने स्वार्थों की सिद्धि हुआ करती है। हिन्दुस्तान को क्यों स्वतन्त्र नहीं होना चाहिए? इसलिए कि इससे इंगलैंड वालों के हलवा मंडे में अन्तर आता है। यही हाल मार्क्स का भी है। उसने भी जब श्रेणी संघर्ष का नियम बनाया तो यह नहीं सोचा कि जब वह संसार को श्रेणी रहित और समता वाला समाज बनाना चाहता है तो इस उद्देश्य की इस संघर्षण वाले नियम से किस प्रकार संगति लगाई जा सकता है? संसार की शान्ति के लिए दो बातों की ज़रूरत है कि हम मिलकर और बांट कर काम करें। इसका एक बड़ा सुन्दर उदाहरण शरीर की उपमा से दिया गया है :—

श्रेणी संघर्षण नहीं होना चाहिए

<u>मिलकर और बांटकर काम करना</u> | मनुष्य समाज को एक शरीर कल्पना करके निम्न प्रश्नोत्तर उसके सम्बन्ध में किये गये हैं :—

प्रश्न—उस रचे हुए मनुष्य समूह को किस प्रकार विभक्त किया ? उसका मुख क्या था, उसके बाहु, उरू (जंघाएं) और पांव किन्हें कहा गया ?[1]

उत्तर—उस (मनुष्य समूह) का मुख ब्राह्मण था, बाहु क्षत्री को किया, जो वैश्य उसे जंघा स्थानी बनाया और पांव से से शूद्र प्रकट हुआ ।[2]

संसार का समस्त क्रियात्मक व्यवहार गृहाश्रम से सम्बन्ध रखता है । इसी आश्रम वाले धन पैदा करते हैं, कृषि, व्यापार इसी के आधीन है । बड़े बड़े कारखाने भी यही खोलता है । युद्ध भी यही करता है इत्यादि इसलिए इसी आश्रम से सम्बन्धित मनुष्य समाज का सिर ब्राह्मण को ठहराया क्योंकि अध्ययन से और अध्ययन का संबन्ध मुख्य रीति से मस्तिष्क ही के आधीन होते हैं और रक्षा का काम बाहू से किया जाता है इसलिए उसे क्षत्री बतलाया गया । जंघाएं (पेट समेत) शरीर का भोजन भंडार है । यहीं से समस्त शरीर को भोजन और भोजन से बना हुआ रक्त आदि मिला करता है इसलिए उसे वैश्य ठहराया । समस्त संसार का भार अपने शारीरिक परिश्रम से शूद्र वहन करता है इसलिए उसे पाँव स्थानी बतलाया । समस्त गृहस्थाश्रम और उसके चार विभाग ब्राह्मण, क्षत्री आदि को शरीर से उपमा देते हुए शिक्षा दी गई है कि जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अव-

---

(1) यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादावुच्येते ॥ (यजुर्वेद ३१।१०)

(2) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ (यजुर्वेद ३१।११)

यव का काम पृथक २ है, परन्तु उनमें कितना सहयोग है वह कथनातीत है। यदि पांव में एक फांस लग जाती है तो बाक़ी समस्त शरीर का ध्यान उसी ओर चला जाता है और जब तक उस फांस को निकाल कर पांवों को आराम नहीं पहुँचा दिया जाता तब तक सारा शरीर बेचैन जैसा रहा करता है। वही हाल शरीर के अन्य अवयवों का है। इस से बेहतर उपमा मिलकर और बांट कर काम करने की और कोई दूसरी नहीं दी जा सकती थी—आश्रम और वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य भी यही है कि समस्त समाज मिल कर और बांटकर अपना अपना काम करे।

इस उद्देश्य की पूर्त्ति में रुकावट क्यों ?

यह उद्देश्य सहस्त्रों वर्ष तक पूरा होता रहा है। जब तक संसार में आर्य्यों का राज्य रहा और आर्य सभ्यता देश में प्रचलित रही। राम ने रावण को विजित किया परन्तु उन्होंने लंका को अवध की कालोनी नहीं बनाई किन्तु उसी के भाई विभीषण को राजा बना दिया। कृष्ण ने जरासंध को पराजित किया तो उसके राज्य मगध देश को पांडवों के राज्य इन्द्रप्रस्थ में शामिल नहीं किया किन्तु भविष्य के लिए कुछ मामूली शरतें ठहरा कर उसके पुत्र संजय को उसके राज्य का राजा बना दिया। आर्य सभ्यता किसी अन्य देश को परतन्त्र और किसी अन्य जाति को दासता की बेड़ी में जकड़ना पाप समझती है। हमारी सभ्यता का आदर्श "स्वतन्त्र रहो और अन्यों को परतन्त्र न रहने दो" रहा है परन्तु पश्चिम की स्वार्थ परायण जातियों ही ने किसी अन्य देश को अपनी कालोनी बना कर उस जाति को परतन्त्र बनाने की प्रथा को संसार में प्रचलित किया। यह

झूठ है कि आर्यों ने बाहर से आकर इस देश के असली रहने वालों को अपना दास बनाया। और स्वयं देश के मालिक बन गये। यह उन्हीं पश्चिमी लेखकों के मस्तिष्क की उपज है जिन्होंने अपने कोलोनी बनाने रूप दुष्कृत्य को छिपाने के लिए एक आड खोज की है। ऐसे इतिहास इतिहास नहीं इतिहासाभास हैं। इन्हें शीघ्र से शीघ्र रद्दी के टोकरों में डाल देना या अग्नि के भेट कर देना चाहिए।

योरुप का नैशनलइज्म

पश्चिमी देश अपने नैशनलइज्म की आड़ में यह एक दुष्कृत्य करते हैं। यह नैशनलइज्म पश्चिमी देशों में एक जन्म की जाति बनाने का साधन है। और इसी वाद (इज्म) के आश्रय से अनेक जन्म की जातियां वहां बन गईं। अंगरेज फ्रेंच, जरमन, रूसी आदि सभी जन्म की जातियां हैं। इन में और इस देश में प्रचलित जन्म की जातियों में केवल इतना अन्तर है कि इस देश की जन्म की जाति किसी परिवार विशेष में जन्म लेने से बनती है और यौरुप की जन्म की जातियां स्थान विशेष में जन्म लेने से बना करती हैं। परन्तु इन स्थान विशेष में जन्म लेने से बनी हुई जन्म की जातियां इस देश में प्रचलित जन्म की जातियों से कहीं अधिक भयानक हैं। यह योरुप की जन्म की जातियां एक दूसरे की प्राण लेवा है। आज (१९४५ ई०) का युद्ध इसका जीता जागता उदाहरण है। अस्तु यह बात नहीं है कि हम नैशनल इज्म को नहीं मानते हैं, हम भी नैशनल इज्म को मानते हैं परन्तु हमारा नैशनल इज्म, उद्देश्य नहीं अपितु विश्वभावना तक पहुँचने का साधन है। परन्तु योरुप की जातियों का नैशनल इज्म उनका उद्देश्य है।

इससे आगे उन्हें कुछ दिखाई ही नहीं देता। योरुप में जो समय समय पर युद्ध होते रहते हैं और जिनकी लड़ी टूटने नहीं पाती, उसका कारण उनका यह नैशनल इज़्म ही है। यदि उन्होंने अपना दृष्टिकोण न बदला तो उनका यह नैशनल इज़्म उन को समाप्त किए बिना न छोड़ेगा। अस्तु हमने देख लिया कि कि चाहे वर्ग का श्रेणी संघर्षण हो चाहे योरुपीय जातियों का नैशनल इज़्म ये दोनों मिलकर और बांट कर काम करने के सुनहरे सिद्धांत के विरुद्ध हैं इस लिए संसार में शांति इन दोनों वादों में सुधार किए बिना नहीं हो सकती।

वर्गवाद के अच्छे पहलू

इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि पूँजीपतियों के अत्याचार ने जो वे चिरकाल से ग़रीबों पर करते रहते थे। वर्गवाद को कार्य और प्रति कार्य के नियमानुसार पैदा किया और इसमें भी सचाई है कि इस से रूस को लाभ भी पहुँचा और उसके जो निकृष्ट और क्रियात्मक पहलू थे उन से देश को हानि भी काफ़ी पहुँची। हम उसके दोनों पहलुओं को प्रकट कर देना उपयोगी समझते हैं।

उसके अच्छे पहलू इस प्रकार हैं :—

(१) कृषि और कारखानों के पैदावार की वृद्धि करके उन का उपयोग उपभोग में करना। उद्देश्य उपभोग था धन लाभ नहीं। (२) शिक्षा का प्रत्येके के लिए अनिवार्य, (३) बच्चों के पालन पोषण तथा माता के लिये गर्भ और उत्पत्तिकाल में सब प्रकार के सुभीते देना। (४) देश की रक्षा का प्रबन्ध, (५) बड़े शहरों में मनोरंजन के लिये उद्यानों तथा औषधि आदि का प्रबन्ध.

(६) सस्ता न्याय प्रबन्ध, (७) स्त्रियों की योग्यताओं का अधिक से अधिक उपयोग, (८) समाचार पत्रों की वृद्धि। ४६७ समाचार पत्रों की जगह (१६34 ई० में) ५४०० पत्र निकलते हैं। जिन की ग्राहक संख्या २० लाख से लेकर 3 क्रोड़ ८० लाख तक है। १७६० ज़िले की संगठित सभायें और १५७० कारखाने हैं।[1] (६) अपठिता ६० फी सदी की जगह १६३० ई० में केवल १० फीसदी रह गई।[2] अंगरेज़ों के स्वार्थपूर्ण शासन में २०० वर्ष में केवल ६ फ़ीसदी लोग पढ़ सके बाक़ी ६१ फीसदी मूर्ख हैं। कुछ पहले रूस के बोलशेविक विद्वान् मार्क्सवाद को पुराना अहदनामा और लेनिनवाद को नया अहदनामा कहा करते थे। परन्तु अब दोनों ही पुराने अहद नामे हो गये। अब तो स्टेलिनवाद ही बोलशेविक रूस का नया अहदनामा है। सोवियट रूस की उपर्युक्त अच्छी बातें जो वर्णन की गई हैं यह कोई वर्गवाद की विशेषता नहीं ये तो सुधार की बातें हैं जो कोई भी सुधारक समाज कर सकता है। जापान ने ६०—७० वर्ष के बीच सभी बातों में उतनी उन्नति कर ली थी जिसे देखकर दुनियां चकाचौंध में आ गई थी।

वर्गवाद के अक्रियात्मक पहलू

मज़हब के दूर करने का यत्न करना, (२) प्राईवेट प्रापर्टी का न रहने देना, (३) व्यक्तिगत व्यापार को नष्ट करना तथा पारिवारिक जीवन का मूल्य न समझना, ये तीन अशिष्ट प्रथायें हैं जिन्हें वर्गवाद फैलाना चाहता है। पुरातन

1. Modern Review Calcutta june 1934 P. 150
2. The Great Offencive by M. Hindus Ch. XI

काल से चले आए, चिरपरिचित शब्दों धर्म स्वतंत्रता, संपत्ति, घर और परिवार अब इन की कोई क़ीमत नहीं। वर्गवाद का एक मात्र उद्देश्य अपने बनाये उद्देश्य और इच्छाओं को पूरा करना है।[1]

विश्वभावनावाद

ऊपर कहा गया है कि हमारा नैशनलइज्म, विश्वभावनावाद का साधक है। विश्वभावनावाद जिसे आर्य जाति ने एक समय समस्त पृथिवी पर फैलाया था, उस का संबन्ध मनुष्य की मनोवृत्ति है। अधिक से अधिक मनोवृत्ति तब उदार हो जाती है जब वह विश्वभावना का रूप ग्रहण कर लिया करती है। हमारी दृष्टि में मनुष्यत्व और विश्वभावनावाद एकार्थक शब्द हैं। परन्तु पश्चिमी देशों में इस मनुष्यत्व के समझने में भी मतभेद हैं।

मनुष्यत्व क्या है

लीनन जिसे पथिक "उलियानोव (Ulianov)" भी कहते थे वह मनुष्यत्व के अर्थ आत्मबलिदान (Sacrifice) समझता था।[2] आत्म-बलिदान को ही यज्ञ कहा जाता है। श्री कृष्ण ने एक जगह कहा है कि "प्रजापति ने यज्ञ के साथ प्रजा को उत्पन्न किया।[3] अन्य अनेक निश्चित लेखकों ने मनुष्यत्व को

(1) The Great Offencive by M. Hindus P. 11 (Published in 1933)
(2) Lenin by Valarise Marcu p.81,82,92,97.
(3) सहसज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टा कामधुक्॥

भी नैशनलइज़्म से मिलता जुलता शब्द समझा है परन्तु यह उनकी भूल है। यह (मनुष्यत्व) शब्द इतना साफ अर्थ वाला है कि इसमें अनेक अर्थों की गुन्ज़ाइश ही नहीं। अस्तु धन यज्ञ के लिए होना चाहिए जिस से अनेक उपयोगी काम होते रहें। परन्तु धनवान् यह नहीं चाहते।

वर्तमान आर्थिक समस्या वंचनापूर्ण है।

आज पूँजीपतियों का विश्वास यह है कि धन का न केवल साधारण ब्याज मिलना चाहिए अपितु उस ब्याज का रेट अधिक से अधिक हो और उसके साथ ही मिश्रित ब्याज भी और वह भी चिरकाल तक बिना किसी गैप के मिलता रहना चाहिए। इसी प्रकार पूँजी के किसी व्यवसाय में लगाने से मुनाफ़ा भी अधिक से अधिक होना चाहिए जिससे उस मुनाफ़े पर मुनाफ़े से नई पूँजी तय्यार होती रहे। और यह क्रम समाप्त नहीं होना चाहिए। यह वंचनापूर्ण नीति पूँजी पतियों की है जो आम तौर से पश्चिमी देशों में प्रचलित है। इसी ठगी की नीति ने कार्य और प्रतिकार्य के नियमानुसार वर्गवाद को जन्म दिया है, जैसा कि कहा जा चुका है। परन्तु इस देश में मनु की स्मृति के अनुसार मूलधन से सूद के न बढ़ने देने की प्रथा प्रचलित थी।[1] इस प्रथा को 'दामट' कहते थे। इंगलैंड में बिशप जार्ज मर्टन के यत्न से सूद का दर १०) सैकड़ा वार्षिक नियत हुआ था। यह दर घटा कर पहले ८) किया गया। उसके बाद १६५० ई० में ६) प्रति सैकड़ा सालाना नियत हुआ परन्तु १८५५ ई० में सूद के नियन्त्रण करने

(1) मनुस्मृति।

के सभी क़ानून रद्द कर दिए गए। यह समय था जब योरुप में वंचनापूर्ण आर्थिक नीति प्रचलित हो चुकी थी। १८५५ ई० में यह क़ानून इस देश में भी प्रचलित कर दिया गया। योरुप के लोग तो मन चाहा सूद १८५४ के बाद लेने ही लगे थे। १८५५ ई० के बाद इस देश वाले भी उस वंचना पूर्ण नीति का अनुकरण करने लगे। जिसका फल यह हुआ कि 'दामट' प्रथा उड़ गई और लोग अंधाधुन्ध सूद लेना पाप समझते थे।[1] मनु ने ब्याज खाने वाले का अन्न अन्यों के लिए निषिद्ध ठहराया है।[2] यह उदाहरण बतलाता है कि किस प्रकार विदेशी शासकों ने यहां से प्रचलित नियमों को नष्ट कर के एक प्रकार की ठगी का प्रचार किया।[3]

(२) एक और अत्यन्त कुनीति का साधन सिक्कों के रूप में धन बन रहा है, सिक्के असल में इसलिए चलाए गए थे कि इनसे वस्तुओं का विनमय (Barter or Exchange) में सुभीता हो परन्तु अब वह स्वयं व्यापार की एक वस्तु बन गया है। बैंकिंग (Banking) इसी व्यापार का नाम है। यह व्यापार और भी इस से दूषित हो गया है कि पेपर करेंसी के रूप में एक चिन्ह (Token) की रचना कर ली गई है। अब इस क़ाग़जी धन के पीछे किसी देश में भी उतना सोना, चांदी

---

(1) विश्ववाणी प्रयाग मार्च १९४१ ई० पृष्ठ २८०

(2) मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक २१०

(3) सभी धर्मों और मज़हबों में अधिक ब्याज निषिद्ध ठहराया है। परन्तु लामज़हबी की पश्चिमी सभ्यता ने सूद का नियन्त्रण अपने स्वार्थ के विरुद्ध समझा था। (लेखक)

आदि सुरक्षित नहीं रक्खे जाते जितना उस क़ाग़ज़ी धन का काग़ज़ में अंकित मूल्य है। अनेक जगह ७५ या अधिक धन भी सोने चांदी के रूप में अब नहीं रक्खा जाता। यह स्पष्ट है कि इस अवस्था का नाम धोखा देने के सिवा और कोई नहीं और यह धोखा देने वाली वह एजेन्सी है जो इन नोटों को जारी करती है, वह चाहे कि राज्य हो या कोई बैंक। यह व्यापार झूठी ज़मानत (False credit) पर चल रहा है। झूठा इस लिए कि इसके पीठ पर सोना चांदी के रूप में कोई ज़मानत नहीं। परन्तु ये और इस प्रकार से व्यवसाय इस देश में न प्रचलित थे और न मनु के नियमों के होते हुए प्रचलित हो सकते थे। डाक्टर भगवानदास ने एक जगह लिखा है कि अंगरेजी शब्द धन के लिए weal—th (weal = willness, welfare) है। इसके लिए संकृस्त शब्द 'धनम्' है जिसका शब्दार्थ (दधाति फलानि) 'वह धन जो फल पैदा करे' है[1] पेपर मनी के पीठ पर यदि सोना चांदी की ज़मानत हो तब तो उस समय भी उसका कुछ मूल्य हो सकता है। उस कागज़ी धन को जारी करने वाला बैंक यदि फेल हो जावे और उसके पीठ पर यदि ज़मानत भी नहीं तो फिर उस पेपर की कोई क़ीमत नहीं रहती और इस लिए उसे फिर धन भी नहीं कह सकेंगे, क्योंकि वह कुछ फल नहीं दे सकेगा। धन के इस अवान्तर रूप को देने के बाद हम फिर उसी असली विषय विश्वभावनावाद पर आजाते हैं।

---

(1) Ancient V. Modern Scientific Socialism by Dr. Bhagwan Das P. 35

क्या पूंजी के बटवारे और पुनः पुनः बटवारे से मनुष्यों में स्थाई समता आसकती है ? "नहीं" ही कहा जा सकता है। कल्पना करो कि किसी महान् शक्ति ने पृथिवी के समस्त धन को इकट्ठा करके, सारी आबादी में बराबर बराबर बांट दिया तो प्रश्न यह है कि क्या फिर सब बराबर धन वाले लोग बने रहेंगे ? कदापि नहीं क्योंकि धन का बटवारा तो शक्तिमत्ता से किया जा सकता है परन्तु मनुष्य स्वभाव की बिभिन्नता को कौन बदल सकता है ? एक व्यक्ति धन संग्रह का पक्षपाती है, दूसरा अधिक खर्च करने वाला। तीसरा धन को दोनों की, रक्षा रूप दान देने के हक़ में हैं, चौथा जुये आदि दुर्व्यसनों के पक्ष में होकर धन का अपव्यय करना चाहता है। तो वतलाओ तो सही कि इन स्वभाव की विभिन्नताओं को रखते हुए किस प्रकार वे बराबर धन वाले रह सकते हैं ?

पूंजी का पुनः बटवारा करना

मुरादाबाद नगर की एक घटना है, एक दौलतमन्द साहूकार की मृत्यु हो गई। उसके पास ७ लाख की संपत्ति और दो पुत्र थे। पिता के मरने पर दोनों भाइयों को आधा आधा धन मिल गया। बड़ा भाई समझदार था उसने अपने हिस्से के धन को व्यवसायों में लगाकर और भी बढ़ा लिया परन्तु छोटा भाई बे समझ और दुर्व्यसनी था। उसने जुये, रंडीबाज़ी और शराब खोरी इत्यादि में, कुसंगति में पड़कर, तीन वर्ष ही में अपना सारा धन बरबाद कर दिया। अब विचार करो कि एक

एक उदाहरण

बार तो इन दोनों की संपत्ति बराबर कर दी गई थी परन्तु वह बराबर रह न सकी। इसलिये कि दोनों भाइयों के स्वभावों में अन्तर था। अस्तु; यह विचार कि बटवारे और पुनः बटवारे से सभी मनुष्य बराबर संपत्ति वाले होजावेंगे, बुद्धि मत्ता का विचार नहीं है और जितने शीघ्र छोड़ दिया जावेगा उतना ही अच्छा होगा।

आश्रम और वर्ण-व्यवस्था तथा धन विषमता

वर्गवाद के विपरीत आश्रम और वर्ण व्यवस्था के प्रचलित हो जाने से, धन की विषमता रहने से भी, कोई धन न होने या कम होने से कष्ट नहीं उठा सकता। क्योंकि इस व्यवस्था में विद्वानों की शोभा तो धन हीन रहने ही से होती है। जैसा कि कहा जा चुका है कि तीन आश्रम ब्रह्मचर्य, बानप्रस्थ और संन्यस्थ आश्रम में रहने वालों को कोई पेशा करके धन पैदा करना निषिद्ध ठहराया गया है। फिर इनका गुज़ारा किस प्रकार हो? भारतीय सभ्यता का एक अंग और गृहस्थ आश्रम वालों का धर्म है कि जहां इन आश्रमों वाले व्यक्ति हों पहले उन्हें भोजन कराना चाहिये। उनकी सेवा और शुश्रूषा करनी गृहस्थों के दैनिक कर्तव्यों—पंच यज्ञों में शामिल की गई है, इसलिये उन्हें कभी कष्ट नहीं होता था और न अब हो सकता है क्योंकि भारतीय संस्कृति का महत्व तो त्याग में है न कि भोग में।

चौदहवां अध्याय

"नवीन और प्राचीन समाज वाद की तुलना"

समाजवाद के संबन्ध में मुख्य रीति से तीन स्कूल हैं जो इस समय, चाहे वे वाद रूप ही में क्यों न हों, प्रचलित है:—पहला स्कूल मनु का है जिसका रूप आश्रम और वर्ण हैं। [2] दूसरा स्कूल मार्क्स लीनन आदि का है जो वर्गवाद के रूप में प्रचलित है और तीसरा स्कूल हिटलर और मसौलनी आदि का चलाया हुआ नाज़ या फेज़ इज़म के नाम से प्रसिद्ध है। हम यहां इन तीनों का संक्षिप्त और अत्यन्त संक्षिप्त विवरण जो केवल मूल रूप में होगा देते हैं जिससे तीनों की तुलना करने में सुभीता हो।

तीन वाद उनका विवरण और उनकी तुलना

इस स्कूल को चाहे मनु का स्कूल कहो चाहे वेदवाद अथवा भारतीय संस्कृति, ये तीनों एकार्थक वाक्य हैं। इस वाद में, मनुष्य के स्वभावनुकूल तीनों इच्छाओं की पूर्ति का प्रत्येक व्यक्ति को अवसर प्राप्त रहता है। अर्थात वह एक विशेष सीमा तक अपना व्यक्तित्व भी स्थिर रख सकता है जिसके द्वारा आत्मिक और शरीरिक भोजन की प्राप्ति उसे होती रहती है, (२) निज संपत्ति की इच्छा की भी पूर्त्ति होती रहती है,

पहला स्कूल मनु का

और (३) तीसरे पारिवारिक जीवन भी बना रहता है। पुरुष को स्त्री की इच्छा और स्त्री को पुरुष की इच्छा नैसर्गिक है। पारिवारिक जीवन से इस की पूर्त्ति होती रहती है।

इस वाद में व्यक्तित्व को स्थिति का अभाव है इसलिये कि

दूसरा मार्क्सवाद

मज़हब को दूर ही से लालझंडी दिखाई जाती है। (२) निजी संपत्ति नहीं रक्खी जा सकती है और निजी संपत्ति के अभाव से पारिवारिक जीवन भी नहीं रह सकता। इस वाद में समाज की मुख्यता है। व्यक्ति को भी पूर्णतया समाज के आधीन इस प्रकार रहना चाहिये जिससे उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का लेश भी बाक़ी न रहे। समाज ही संपत्ति का स्वामी हो, समाज ही उत्पत्ति के साधनों का मालिक हो।

इस वाद के संचालकों के कथनानुसार इस वाद में मनुष्य

तीसरा फ़ैजइज़्म

की तीनों नैसर्गिक इच्छाओं (१) मज़हब, (२) परिवार और संपत्ति रखने की बात स्वीकार की गई है। इस वाद की मुख्यता यह है कि इसमें पूंजी का नियंत्रण रहता है। मसौलनी ने इस वाद के संबन्ध में विवरण देते हुये कहा था:— कि "रशा और इटैली दोनों जगह का शासन स्वतन्त्र विचारों का विरोधी है। सब कुछ स्टेट के अन्दर है, उससे बाहर या उसके विरुद्ध कुछ नहीं।"[1] इसीलिये इस वाद के प्रचारक,

(1) अंग्रेजी के शब्दों में :—"Every thing within the state, nothing outside the State, nothing against the state."

इस वाद को अनुदार कहने में ज़रा भी संकोच नहीं करते।[1] मेजर ग्रेहम पोल ने इसे पूंजीपतियों का एक गृह बतलाया था जो राज्य का संचालन करते हैं। भयानक नैशनल इज्म इसे कहा जाता है।[2]

तीनों का जितना मौलिक विवरण दिया गया है उस से स्पष्ट है कि एक दृष्टि ही में तीनों प्रकार के वादों का चित्र सामने खिंच जाता है और प्रत्येक व्यक्ति को अवसर मिल जाता है कि तीनों के गुण और दोष को देखते हुए जिसे चाहे अस्वीकार करें।

पहले वाद में स्थानिक देशभक्ति (Local Patriotism) की बहुत थोड़ी गुञ्जायश है। समाज की ममता भी एक सीमा तक रहती है परन्तु आज कल के शब्दों में इस ममता का अभिप्राय पश्चिमी ढंग का नैशनल इज़्म, वर्गवाद, सांप्रदायिकता आदि नहीं। दूसरे और तीसरे वादों में स्थानिक देशभक्ति का साम्राज्य रहता है। जगत् को समष्टि रूप से देखने की भावना का सर्वथा अभाव रहता है उसका कारण श्रेणी संघर्षण है, जिसका वर्गवाद में होना अनिवार्य है। तीसरे वाद को उसके संचालक स्वयं अनुदार बतलाते हैं फिर उस के लिए अधिक कहने की ज़रूरत ही नहीं।

(:) वर्गवाद के वाद और क्रिया में बड़ा अंतर इसलिए पड़ जाता है कि इस वाद में व्यक्तिगत जीवन के नियमबद्धता के साथ व्यतीत करने का कोई विधान नहीं, जैसा कि आश्रम और

---

(1) George seldes, world Panaroma 1918-33 P. 142.

(2) Modern Review for Octo 1933.

वर्ण व्यवस्था में है। इस त्रुटि से मनुष्य समता का अच्छा अंग नहीं बन सकता।

(३) कुछ एक वर्गवादी कहा करते हैं कि मनुष्य को जन्तुओं की स्वाभाविक और सामाजिक प्रवृत्ति को देख और समझ कर उसका अनुकरण करना चाहिए। कदाचित् ये वे व्यक्ति हैं जिन की बुद्धि में मनुष्य और जन्तुओं के अन्तर समझने की योग्यता नहीं। ऐसे लोग ही सामाजिक और पारिवारिक कृत्यों विवाह आदि को स्त्री और पुरुषों दोनों के लिए बन्धन का हेतु समझा करते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ एक मनोरंजक बातें ध्यान देने योग्य हैं। कुछ एक वर्गवादी स्त्री पुरुषों ने एक समय फ्रांस में विवाह करना छोड़ दिया। उन्होंने विवाह करना तो छोड़ दिया परन्तु विवाह की नैसर्गिक इच्छा से वे ऊपर नहीं हो सके। इस लिए अनुचित रीति से उत्पन्न सन्तानों को रखने और पालन-पोषण करने से स्त्री पुरुष दोनों ने इनकार कर दिया। तब ऐसे बच्चों के नष्ट कर देने के उद्देश्य से फ्रांस में एक समय १९१४ से पहले भट्टियां बनाई गई। इन भट्टियों के स्वामी नियत फीस लेकर बच्चों को जला दिया करते थे। एक ऐसी ही भट्टी वाली स्त्री पकड़ी गई। भट्टी का हिसाब देखने से पता चला कि गिरफ्तारी के समय ऐसे तीन बच्चों को जला चुकी थी। इस प्रकार विवाह न करने और बच्चों के नष्ट होने से फ्रांस की आबादी कम होने लगी तब फ्रांस की सरकार को उन लोगों पर जो सन्तान पैदा कर सकते थे, सन्तान न रखने का टैक्स लगाना पड़ा था।

(३) आश्रम और वर्ण व्यवस्था की एक खूबी यह है कि

न तो समाज व्यक्ति को भूल सकता है और न व्यक्ति समाज से लापरवाह हो सकता है। अपितु दोनों अन्योन्य आश्रम (Inter-dependent) होते हैं और इस लिये दोनों का सुधार होता रहता है।

(४) श्रेणी सहित समाज को रखना कुछ मनुष्य स्वभाव का अंग सा बन गया है। हम ने देखा है जिन देशों में केवल एक ही मध्य श्रेणी थी तो उनमें भी उनके दो भेद उच्च और अनुच्च के नाम से हो गए।

पन्द्रहवां अध्याय

"वैदिक राज्यप्रथा"

राज्य की आवश्यकता

मार्क्स के वाद में अन्तिम वस्तु वर्गवादी समाज है। उसके बन जाने पर राज्य स्वयमेव नष्ट हो जावेगा। परन्तु भारतीय राज्यपद्धति में राज्य को अनिवार्य संस्था ठहराया गया है। १६३३ ई० में फ़ैसिस्ट इटली में २२ संघ (Coroporations) थे और सोवियट रूस में ४६ व्यापार संघ थे। हमारी राज्य व्यवस्था के बनाने वाले केवल चार (४) ही श्रेणी या वर्ण (Guild) थे। जैसा कहा जा चुका है उनमें से एक शिक्षा सम्बन्धी, दूसरा प्रबन्धसम्बन्धी, तीसरा धनोत्पत्तिसम्बन्धी और उनके प्रबन्ध से सम्बन्धित और चौथा शारीरिक परिश्रम से सम्बन्धित था। इन चारों श्रेणियों के कर्तृत्व को मर्यादा के भीतर रखने तथा उनके समस्त पुरुषार्थों को संगठित करने के लिए एक मुख्य व्यवस्थाविधायिनी सभा (Central Legeslative Society) होती थी जो चारों संघों के प्रतिनिधियों से बना करती थी। उसका एक मुख्य प्रधान (राजा) निर्वाचित होता था, और व्यवस्था विधायिनी सभा के अन्तर्गत रह कर काम करता था। इस राज-पद्धति से बने हुए राज्य को

मानव राज्य कहा जाता था।[1] जिस प्रकार किसी भी छोटे समूह या समुदाय को नियन्त्रण में रखने के लिए एक मुखिया की ज़रूरत होती है। उसी प्रकार देश को सुशासन में रखने के लिए एक राजा की ज़रूरत होती है। उसे चाहे राजा कहें या सभापति। राजा से घृणा क्यों होने लगी जब राजा प्रजा के अनुकूल काम न कर के स्वेच्छाचारी बन गए[2] और प्रजा पर अत्याचार करने लगे। चाहिये तो यह था कि राजा की इस निरंकुशता को दूर कर के राजसंस्था को फिर अच्छा बना लेते परन्तु वर्गवाद ने अपने को दूसरे किनारे पर पहुंचा कर राजा के होने की आवश्यकता ही से इनकार करना शुरू कर दिया। राज प्रबन्ध की स्थिति के सम्बन्ध में इस देश का जो प्रबन्ध था वह मुक्त कंठ से प्रशंसा के योग्य था अनेक देशी और विदेशी विद्वानों ने उसकी जी खोल कर प्रशंसा भी की है। हम यहां उसका स्थूल ढांचा देते हैं :—

प्राचीन कालिक भारतीय राज्य व्यवस्था

सर चार्लिस मेटकाफ़ के लेखानुसार यहा की ग्राम पंचायतें छोटे मोटे प्रजातन्त्रीय राज्य थे। उनमें प्रत्येक ऐसी बातें शामिल थीं जिन की ग्रामों को ज़रूरत हुआ करती है उनका विदेशों से कोई सम्बन्ध नहीं होता था। वे जब ही समाप्त हो

(1) इसको अंगरेज़ी शब्दों में Aristo-homo-cracy The rule of the bat men ie "Legislation by the wisest=Execuiton by the ablest" or Humanism कहा जायगा (Ancient) V. Modern Scientific Socilism by Dr. Bhagwan Dass.)

(2) वह एक राजा ही तो था जिसने क्राम्वेल की लाश को क़ब्र से निकलवा कर फांसी पर लटकवाया था। (लेखक)

सकती थीं जब उनसे पहले सभी कुछ समाप्त हो जाता था। एक वंश के बाद दूसरे वंश उनमें शामिल होते रहते थे। क्रान्ति पर क्रान्ति सफलता के साथ होती रहती थी परन्तु उनका ग्राम की पंचायतों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाता था। इन ग्रामों की पंचायतों ने अन्य बातों की अपेक्षा आर्यजाति की रक्षा करने में सब से अधिक काम किया था। इन पंचायतों के द्वारा ग्रामीण प्रजा के मनोरंजनों और बड़ी सीमा तक उनकी स्वतंत्रता में बाधा नहीं पड़ने पाती थी।[1]

(२) सरजार्ज वर्टवूड (Sir George Bird Wood) ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है "हिन्दुस्तान में सब से अधिक धार्मिक और राजनैतिक क्रान्तियां हुई हैं। दुनियां में अन्यत्र कहीं ऐसा नहीं हुआ है परन्तु ग्राम पंचायतें, समस्त देश में अपना काम बिना किसी रुकावट के करती रहीं। सिथियन, ग्रीकष्म, अफ़गान, मंगोल आदि अपने अपने पहाड़ी देशों से आकर आक्रमण करते रहे इसी प्रकार पौरचगीज़, डच इंगलिश, फ्रेंच और डैन अपने अपने समुद्रों से आये और सफलता के साथ अपना अपना अधिकार देश के कुछ कुछ भागों पर करते रहे परन्तु ग्रामों के धार्मिक और व्यापार संघों (Religion, trades union of villages) पर उनके आने या जाने

(1) Rap-select Com munication of House of Commons 1832. vol III appendix 54- P. 33 qouted in the book' Local Govt in ancient India by Radha Kumud Moker ji P. 3.

का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे एक चट्टान की तरह, ज्वारभाटे के चढ़ाव और उतार से अप्रभावित रहे। [1]

(३) हिन्दु राज्य की आदर्श नीति यह थी कि ग्राम पंचायतें तथा अन्य राज्य की संस्था, सर्व साधारण के कार्यों में, इतना कम, जिससे कम होना संभव न हो, हस्ताक्षेप करतीं थीं। इन संस्थाओं के काम जानो माल की रक्षा और मालगुज़ारी के वसूल करने तक, जिससे रक्षा का काम उचित रीति से हो सके, सीमित थे। [2]

(४) राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं की सीमायें पृथक पृथक थीं परन्तु दोनों जनता के लाभ में, एक दूसरे को सहयोग देती थीं। पश्चिमी देशों की अपेक्षा यह यहां की विशेषता थी। पश्चिमी देश सब (जगह और ग्राम) पर नियंत्रण रखने के लिये, राज्य के प्रत्येक कार्य में हस्ताक्षेप किया करते हैं चाहे वे काम राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित हों या सामाजिक जीवन से। पश्चिमी देशों में पहले राज्य समाज का एजेन्ट होता था पीछे से (समाज का) मालिक बन गया और समाज अपनी स्वतन्त्रता खो कर उसी में शामिल हो गया परन्तु प्राचीन काल में इस देश के राजे, राज्य के सरदार हुआ करते थे समाज के नहीं। [3]

---

(1) Indurtrial Arts of India by Sir George Bird Wood P. 320.

(2) Local Government in ancient India by Radha Kumud Mukarji P. 3

(3) Local Govt. in ancient India P. 4

(५) इंगलैंड में स्थानिक संस्थायें काम भी अधिक करती हैं और राज्य अपेक्षा धन भी बहुत खर्च करती हैं परन्तु वे राज्य की बनाई हुई संस्थायें ही हुआ करती है और राज्य के आधीन ही रहा करती हैं परन्तु प्राचीन भारत की पंचायतें स्वतन्त्र और वंशों के जीवन और संगठन प्रवाह उनकी अवस्थाओं को प्रभाव से बना करते थे।[1]

(६) इन्हीं स्वतन्त्र पंचायतों और संघों से, क्योंकि इनका संबन्ध केन्द्री राज्य से हुआ करता था, इस देश में एक बार इतना बड़ा साम्राज्य बना था, जो इस समय की वृटिश इन्डिया से बड़ा था और जिसका विस्तार अफ़गानिस्तान से मैसूर तक था।[2]

(७) यह समझना भूल है कि प्राचीन भारत जंगल ही जंगल था। यह वह भूमि थी जिसमें बहुतायत से कृषि होती थी। अनेक प्रकार के अन्न पैदा होते थे। व्यापार बहुतायत के साथ होता था अनेक प्रकार के कला और कौशल के काम जारी थे। सुभीते के साथ एक से दूसरी जगह पहुंचने के लिये सड़कें थी और व्यापार पथ व्यापार के लिये बने हुये थे जिनके किनारे थोड़े थोड़े अंतर से कुछ धर्मशालायें थीं और सायेदार वृक्ष और फल देने वाले पेड़ लगे हुये थे। अब भी अनेक जगह हिन्दू आबादी में ये सब बातें मौजूद हैं। अनेक जगह शहर आबाद थे।[3]

---

(1) Local Govt. in ancient India P. 6—7
(2) Do P. 7
(3) Do P. 8

(८) सिकन्दर की चढ़ाई के प्रसंग में ग्रन्थ लेखकों ने लिखा है कि २००० शहर तो केवल पंजाब ही में थे।[1]

(६) यहां तक कि मुसलमानी राज्य काल में, जो अत्यन्त अशांति अस्थिरता का युग था, हिन्दू भारत के लिये वह भी प्राकृतिक, मानसिक और आचारिक उन्नति का समय था। मुसलमान राजाओं का शासन राजधानी अथवा बड़े बड़े शहरों तक सीमित था। अस्ल में इस समय को मुसलमानी काल कहना सर्वथा घटनाओं के विरुद्ध है इसलिये कि वह समय भी हिन्दुओं का उन्नत और पुरुषार्थ काल था। हिन्दू संस्कृति, उस काल में भी अपना विस्तार करती रही जिस का प्रमाण अनेक बौद्धिक और धार्मिक फलती और फूलती संस्थाओं का उस समय प्रचलित होना है। ८ वीं सदी में कुमारिल वेद का प्रचारक था, ६ वीं सदी में शंकराचार्य हुये, इस समय संस्कृत के अनेक ग्रन्थ लिखे गये। ७३० ई० में कन्नौज के राजा यशोबर्मन के यहां भवभूति और ललितादित्य जैसे संस्कृत के विद्वान् थे। ६५० ई० में पद्मगुप्त और माघ, ११५० ई० में नैषध के रचयिता श्री हर्ष हुये जो जयचन्द्र (कन्नौज) का दरबारी था। ८५० ई० में विहार में भट्ट नारायण और ६०० ई० में राजशेखर और ११०० ई० में कन्नौज में जयदेव हुये। १२०० ई० में काश्मीर में सोमदेव, क्षेमेन्द्र और विल्हण और राजतरंगिनी के लेखक कल्हण हुये। दक्षिण हिन्दुस्तान में बास्व (लिंगायत) रामानुज और माधव संस्कृत के धुरंधर विद्वान् हुये। इसी समय

---

(1) Local Govenmente in ancient India by R. K. Mukarji P. 8.

विजयानगर राज्य उन्नत हुआ। इसी समय कबीर के गुरु रामानन्द काशी में हुये। [1]

(१०) बंगाल के नवाब नासिरशाह ने (१२८२-१३२५ ई०) महाभारत का बंगला अनुवाद कराया। विद्यापति ने अनुवाद किया था। कीर्तिवास ने रामायण के ग्रन्थों का बंगला में अनुवाद किया। हुसैन शाह ने मलधरवसु से भागवत का बंगला अनुवाद कराया। श्री वल्लभ और चैतन्य ने १५ वीं सदी में अपने अपने संप्रदाय का प्रचार किया।

(११) जब तैमूर देहली में मार काट करा रहा था उसी समय बंगाल में कुल्लूक भट मनुस्मृति की संस्कृत टीका लिख रहा था।

(१२) बिहार और पश्चिम में १२ वीं सदी में विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा लिखी।

(१३) सिखगुरु नानक, रामदास, तुकाराम और शिवाजी ने इसी बीच (सोलहवीं और सतरहवीं) में अपना अपना कार्य किया।

(१४) फ्रेजर (Frazer) ने एक जगह ठीक लिखा है कि जो लोग पश्चिमी दृष्टिकोण से इस देश की नाप तोल किया करते हैं वे बहुधा भूल जाते हैं कि उपर्युक्त धार्मिक प्रोत्साहन में कितनी महान शक्ति निहित थी। [2]

(१५) इस प्रकार, सामाजिक आत्म शासन में, हिन्दूसंस्कृति को पूर्णतया अवसर मिला कि आत्म रक्षा करते हुये आत्म-व्यक्ति भी करती रहे।

---

(1) Local Govt in ancient India P. 11-16.

(2) The Literary History of India by Frazer.

(१६) प्राचीन भरात में ये स्थानिक राज्य (पंचायत) इस प्रकार से बना करते थे जिससे सभी का उसमें प्रतिनिधित्व हो सके और सभी ज़रूरतें भी पूरी हो सकें :—

(१) परिवारों के मुखिया एकत्र होकर नियम बनाया करते थे कि जीवन का समय विभाग क्या हो और वह किस प्रकार पूरा किया जाय ?

(२) वर्णों के मुखिया शासन किया करते थे।

(३) काम चलाने के लिये तीन संघ (Guild) हुआ करते थे :—

(१) व्यापारसंघ (Trade Guild), (२) वाणिज्य संघ (Merchant Guild), (३) शिल्प संघ (Craft Guild)

(१७) इन स्थानिक राज्य संघों (पंचायतों के लिये निम्न शब्द प्रयुक्त हुआ करते थे :—(१) कुल, (२) गण, (३) जाति, (४) पूग, (५) वराट, (६) श्रेणी, (७) संघ, (८) नैगम, (९) समूह, (१०) संभूय समुत्थान।

वैदिक तथा संस्कृत साहित्य में उपर्युक्त नाम पाये जाते हैं।[1]

(१८) नारद स्मृति में, किसी भी कला सीखने वाले के लिये (Apprentice ship for any art) नियम अंकित हैं। अपरेन्टिस पुत्र के समान माना जाता था।[2]

(१९) जाति पर पेशे निर्भर नहीं होते थे। प्रत्येक प्रकार की लेबर का मान होता था।

(२०) ग्राम पंचायत के निर्णयों का अपील नगर की पंचायतों

---

(1) Local Govt. in ancient India by R. K. Mukarjee P. 29–50.

(2) Do P. 50 & 56.

में हुआ करता था और नगर की पंचायतों का राजा के यहां। राजा का निर्णय अंतिम माना जाता था।[1]

(२१) ये पंचायतें, अन्यों के सिवा, निम्न कार्य आवश्यक रीति से करती थी:—

(१) वर्तमान म्यूनिसिपैलटियों के काम, (२) आवपाशी, (३) नहर और तालाबों का बनवाना, (४) आज कल का पबलिक वर्क्स, (५) भूमि का बन्दोबस्त, (६) सिक्के जारी करना, (७) शिक्षा का प्रबन्ध, (८) चिकित्सा का प्रबन्ध।

(२२) एक व्यापारसंघ (Corporation of Merchants) में १५०० व्यापारी शरीक थे।

(२३) सीमैन (बड़ी नदियों और समुद्रों में जहाज़ चलाने वालों) का संघ भी इसी ग्राम या नगर की पंचायत के आधीन काम करता था।

(२४) मद्रास की एक शिला लेखों (Epigraphy) की रिपोर्ट, जो १६१८ में तय्यार की गई थी और भोज पत्र के लेख (Inscription) सं० ३३३ सन् १६१७ ई० से प्रकट है कि सन् १०२३ ई० में, एक कालिज राजा चतुर्वेदी के दान में, दक्षिण की एक ग्राम पंचायत ने स्थापित किया था जिसमें वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता था और निम्न विषयों के अध्ययन करने वाले ३४० विद्यार्थी उसमें शिक्षा पाते थे, उनके रहने और भोजन का प्रबन्ध उसी पंचायत की ओर से था:—

विषय	विद्यार्थियों की संख्या	विषय	विद्यार्थियों की संख्या
(१) ऋग्वेद	७५	(७) बौद्धायन गण, कल्प	

(1) Local Govt. in ancient India P. 133

(२)	यजुर्वेद	७५		तथा गृह्यसूत्र	१०
(३)	छान्दोग्य-साम	२०	(८)	रूपावतार	४०
(४)	तलवकार साम	२०	(६)	व्याकरण	२५
(५)	वाजसनेय संहिता	२०	(१०)	प्रभाकर	३५
(६)	अथर्ववेद	१०	(११)	वेदान्त	१०[1]

(२५) इन पंचायतों में सम्मति टिकटों द्वारा (Vote by ballt) ली जाया करती थी।

उपर्युक्त प्राचीन राज्यव्यवस्था पर दृष्टिपात करने से, यह बात, उत्तम रीति से प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है कि कितनी सुन्दर व्यवस्था है कि प्रत्येक ग्राम और नगर अपने अपने कार्यों के लिये पूर्ण स्वतन्त्र थे। यदि यह व्यवस्था आज देश में प्रचलित होती तो न बंगाल का अकाल पड़ने पाता न उससे १५ लाख के क़रीब व्यक्ति स्त्री, पुरुष और बच्चे काल का ग्रास बनते और न विहार के उत्तरी भाग में रोगों से ८ लाख के क़रीब मनुष्य मरने पाते। इस व्यवस्था का यहां केवल दिग्दर्शन कराया गया है। अनेक तफ़सील की बातें छोड़ दी गई हैं। वर्गवादी जिस समाज निर्माण का आदर्श दुनियां के सामने रखते हैं उससे कहीं बदतर यह समाज था जिस की ऊपर चर्चा की गई है।

सोवियट रूस की विषमता

सोवियट रूस में, यह कहा जा चुका है कि उन व्यक्तियों के आय में भी विषमता और विभिन्नता है जो अपने को वर्गवादी कहते हैं इस विभिन्नता का स्वाभाविक परिणाम यह निकलता है कि उनके रहन सहन के पैमाने में भी विभिन्नता हो। जो समूह अपने

(1) Local Govt. in ancient India P. 279 & 280

सदस्यों के रहन सहन आदि में ऐक्य नहीं पैदा कर सका उसके लिये यह आशा करना कि वह जगत् से विषमता को दूर कर देगा, ख्यालीपुलाव ही है।[1]

(२) कथन मात्र के लिये ट्रस्ट उनके कारखानों को चलाते हैं परन्तु वे ट्रस्ट असल में सोवियट राज्य के ही अंग हैं। इस दृष्टि से देखा जावे तो इस वर्गवादी सोवियट रूस और पूंजीपतियों के कृत्यों में कुछ भी नहीं या नाम मात्र का भेद निकलेगा।[2]

(३) उपनिवेशों के अपने अधिकार में रखने की दृढ़ नीति और साम्राज्य वाद की अप्रकाशमय कल्पना, जैसी बृटेन की है, आलोचना के लिये बहुत थोड़ी गुञ्जाइश रहने देती है। और पार्लियामेण्ट के नियन्त्रण को भी ढीला कर देती है।[3] सोवियट रूस भी इस महायुद्ध (१६३६-४५) के बाद कुछ इसी प्रकार की नीति का अवलंब ले रहा है और वह नीति वर्गवाद के लिये घातक है।

(४) ट्रौटसकी ने एक जगह लिखा है कि 'यह बात हमें याद रखनी चाहिये कि प्रजातन्त्रीय संस्थाओं के अधिकारों को कम करने के खरचे से समस्त शक्ति कुछ एक इनगिने व्यक्तियों के हाथ में

---

(1) The Great offencive by M. Hindus P. 280

(2) Twelve studies In Russia by F. W. Pathick Hawrence P. 51 & 52

(3) The way to prevent war by Sir Normal Angal Prof. H. Laski.

जाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है"।[1] ट्रौट्स्की को यह कथन बहुत सचाई रखता है। उदाहरण के लिये इंगलैण्ड की पार्लियामेण्ट को देखो, वह आज कल कुछ एक देश प्रबन्धकों के हाथ की कठपुतली बनी हुई है या फ्रांस और अमरीका की वैधानिक सभाओं को देखो, उनका प्रबन्ध विभाग से झगड़ा रहा करता है, और इस लिये वे किसी अप्रभावोत्पादक नीति के काम में लाने से असमर्थ सी रही हैं। यह फांस और अमरीका की विशेषता सही परन्तु सोवियट रूस में तो इस समय निश्चित रीति से प्रजा का शासन नहीं है। चाहे यह कहो कि शासनाधिकार कुछ एक व्यक्तियों के के हाथ में है या यह कहो कि स्टैलिन की "डिक्टेटर शिप" से समस्त देश शासित हो रहा है। दोनों बातें एक दरजे तक ठीक हैं। परन्तु प्रत्येक दशा में वर्गवाद का रूस में खात्मा हो रहा है।

(५) जिन देशों में प्रजातंत्रीयराज्यव्यवस्था का ढंढोरा पीटा जाता है वहां भी वास्तव में निर्वाचन कुछ एक व्यक्तियों के ही हाथ में रहा करता है। हम यहां दो देशों के उदाहरण देते हैं। पहले इंगलैंड को लीजिये। यहां जब पार्लियामेण्ट के सदस्यों के निर्वाचन का समय आता है तो "कौकस" (Caucus) नाम की संस्था निश्चय कर देती है कि किस को निर्वाचन करना चाहिये। उसके बाद मतदाता उसी का अनुकरण करते हैं और उसी को निर्वाचित किया करते हैं यह "कौकस" संस्था मुट्ठी भर आदमियों का समुदाय होती है।

(२) इस के बाद एमरीका निर्वाचन पद्धति पर दृष्टि पात

---

(1) Ancient & Modern Scientific Socialism by Dr. Bhagwan Das P. 40

कीजिये। वहां "बोस" (Boss) नाम की एक संस्था है। एमरीका में यह संस्था वही काम करती है जो इंग्लैण्ड में कौकस किया करती है। एमरीका का प्रेज़ीडण्ट जनता द्वारा नहीं निर्वाचित हुआ करता, जनता का काम केवल इतना होता है कि दो में से किसी एक को चुन लेवे। उन दो का नियत करना जनता के हाथ में नहीं है। दोनों पार्टियों के संगठन करने वाले कुछ एक व्यक्तियों के हाथ में उनका नियत करना हुआ करता है। बहुधा मतदाता प्रभाव-शाली व्यक्ति नहीं हुआ करते। इन से बहतर डिपुटी (पार्लीमेण्ट के मेम्बर) हुआ करते हैं। संक्षेपतः यह बात कही जा सकती है कि प्रतिनिधि राज्य में अधिक मनोरंजक उसका "व्यवच्छेदशास्त्र" (Anatomy) नहीं अपितु "रोगनिदानशास्त्र" (Pathology) है।[1] सोवियट रूस में तो निर्वाचन व्यवस्था इतनी भी परिपक्व नहीं जितनी उपर्युक्त देशों में है। इस लिए इस वर्गवादी प्रजातंत्रीय राज्य को तो जहां तक प्रजा के प्रतिनिधित्व का सम्बन्ध है, एमरीका आदि देशों से दूसरे तीसरे दरजे ही पर मानने के लिये मजबूर होना पड़ेगा। परन्तु वर्ण आश्रम राज्य व्यवस्था में प्रत्येक वर्ण (Guild) अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं और वे ही प्रतिनिधि राजसभा का निर्माण करते हैं और वही राजसभा फिर राजा (प्रधान को चुन लिया करती है। इस से साफ़ ज़ाहिर है कि इस वर्ण आश्रम वाले राज्य में उपर्युक्त देशों की अपेक्षा प्रजा का अधिक और साक्षात् प्रतिनिधित्व है।

(६) वर्गवाद का यत्न यह है कि अमीर, ग़रीब, पूंजीवान,

---

(1) Communism by Prof. H. Laski P. 135 & 136

श्रमजीवी, मजदूरी के बेचने और खरीद करने आदि के सभी भेद दूर कर श्रेणी रहित समाज बना दिया जावे ।[1] परन्तु इस वाद के प्रचारक इस बात को नहीं सोचते कि भिन्न भिन्न व्यवसाय करने वालों की भी तो पृथक् पृथक् श्रेणियां बन जाया करती हैं, उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है वर्णव्यवस्था के रू से इसी प्रकार की व्यवसाय सम्बन्धी श्रेणियां बना करती हैं। फरेंच, जरमन और इंग्लैंड आदि देशों के विद्वानों ने इस भेद को अनिवार्य समझा है। मार्क्स ने भी श्रेणीरहित समाज बनाने का दावीदार होने पर भी इन भेदों को स्वीकार किया है। उसने एक जगह लिखा है कि उनके रोजी कमाने के व्यसायों से उनका विभाजन किया जावे।[2] वर्ण व्यवस्था भी तो यही है। वर्णों के भेद व्यवसाय के अनुसार ही हुआ करते हैं जिन से अपनी जोविका वे उपलब्ध करते हैं।

(७) मार्क्स ने फिर एक जगह लिखा है कि इस दृष्टि कोण से वर्तमान मनुष्य समाज दो बड़े भागों में विभक्त होने योग्य है। (१) पूंजोपति, (२) मजदूर[3] मार्क्स का यह कथन पश्चिमी समाज के अनुरूप है जैसा कि काब्ब ने लिखा है।[4] परन्तु श्रेणी तो एक प्रकार की रही; श्रेणी रहित समाज तो न हुआ। समाज में

---

(1) Communism by Prof Laski ch: IX

(2) "The Scientifically valid Method of classifying men is by the way they earn their living" (Op cits by Laski P. 62—68)

(3) Op. cits by Laski p. 68.

(4) Europe to-day by Cob. p. 694-695.

श्रेणियों का होना वास्तव में बुरा नहीं, होना यह चाहिये कि उनमें सहयोग हो, वर्ण व्यवस्था के रू से जो श्रेणियां बनती हैं उनकी विशेषता यही है कि वे मिलकर और बांट कर काम करती हैं जैसा कि कहा जा चुका है।

वर्ण और आश्रम व्यवस्था चलाने के लिये, बलप्रयोजक और नियन्ता के रूप में मनु ने राज्य और राज्यागति विद्या सभा आदि को माना है।

समाज और राज्य

प्राचीन काल में राज्य के प्राय: तीन भेद स्वीकार किये जाते थे :— (१) एकप्रभुक (Monarchical), (२) प्रजातन्त्रीय (Republic), (३) अल्प अनाधिपत्य (Oligarchic) इन तीनों में से प्रत्येक का काम यही था कि आश्रम और वर्ण व्यवस्था के नियमों को प्रचलित करे, श्री जयचन्द्र लिखित एक ग्रंथ में एक उदाहरण मिलता है कि किस प्रकार आश्रम व्यवस्था बलपूर्वक प्रचलित की जाया करती थी। राजा के पुरोहितों का यह कर्तव्य होता था कि वे देखा करें कि प्रत्येक आश्रम वाला अपने आश्रम की मर्यादा का ठीक रीति से पालन करता है। एक जगह लिखा था कि यदि झूठे साधू जिनका नाम "कहुक तापस" कहा गया है, गेरूये कपड़े पहन कर मुफ्त खोरी करने लगेंगे तो समस्त जम्बू द्वीप को वे ठगी से नष्ट कर देंगे। इसलिये पुरोहित राज्याज्ञा लेकर ऐसे झूठे संन्यासियों को. संन्यास से लौटा कर ढाल तलवार देकर सैनिक बना दिया करता था।[1] अस्तु; उपर्युक्त राज्य के विवरणों को देते हुये श्रीयुत जायसवाल ने एक जगह लिखा है कि यहां कभी कभी दो राजे भी होते थे जिन्हें "डायर की (Dirky)"

(1) भारतीय इतिहास की रूप रेखा जिल्द 1 पृ० 338

शब्द से आज पुकारा जाता है और जो प्रथा स्पार्टी में, नियम पूर्वक प्रचलित थी।[1] जो कुछ इसी से मिलती जुलती प्रथा आज नैपाल के हिन्दु राज्य में भी प्रचलित है।

हीगल और राज्य-व्यवस्था

वर्गवादी और फ़ैसिस्ट दोनों जर्मन दार्शनिक हीगल (Hegal) को अपना दार्शनिक पूर्व पुरुष मानते हैं। हीगल के दर्शन का एक भाग यह था कि "मानव समाज के संगठन की अन्तिम पूर्ति जातीयराज्य (National State) बना देने से हो जाती है।[2] हीगल का कहना है पृथक् पृथक् व्यक्तियों के समुदाय का नाम जनता (People) नहीं है जो कृत्रिम रीति से, पारस्परिक लाभार्थ, जान बूझ कर इकट्ठे हुये हैं। बल्कि जनता उसे कहते हैं कि जो आध्यात्मीक मेल से संगठित हुई है जिस से और जिसके लिये उसके व्यक्ति अपनी सत्ता रखते हैं।[3] इसीलिये वरनस का कहना है कि फ़ैसिस्ट संभूय कारिन राज्य (Corporate state) को मानते हुये व्यक्तियों को राज्य के आधीन ठहराते हैं और उन्हें राज्य का एक अंग मानते हैं।[4] क्रमशः उन्नति का तार्किक विचार वह हीगल के लिए पूर्णस्वतन्त्रता की कार्यप्रणाली मात्र है।[5] जिस प्रकार हीगल ईसाईपन को समाप्त करना चाहता था उसी प्रकार मार्क्स पूंजीपतियों को नष्ट करने की इच्छा रखता था।[6]

---

(1) Hindus polity by K. Jayaswal.
(2) Grammar of Politics by Laski p. 222.
(3) Fasism by Major Burnes p. 37.
(4) Do. p. 84-85.
(5) Commuuism by Laski p. 57.
(6) Do. p. 57-58.

(२) मार्क्सवाद में "क्षत्रियाधिपत्यवाद (Feudalism) जिसका अभिप्राय भूमि को फौजियों के अधिकार में रखना है, मध्यम श्रेणी राज्य और वह राज्य प्रथा जो कुछ एक देश के श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा समष्टि रूप से संचालित होता है। और जिसे महाजन राज्य प्रथा (Squareachy) कहते हैं तथा जनसाधारण वर्गवाद राज्य अथवा संपत्ति वालों में से मध्यम श्रेणी वालों के राज्य को स्वीकार करने से, समाप्त हो गया और ये अन्तिम वर्णित राज्य भी, मार्क्स के मतानुसार अंतमें समाप्त हो जावेंगे।[1]

(३) पुरोहितराज्य (Sacerdotalism) जो आरम्भ में था, ऐसा कहा जाता है और जिसे इस देश की प्राचीन पद्धति के अनुसार ब्राह्मणराज्य (Hagiocracy ईश्वरराज्य या Theocracy ईश्वरप्रभुत्ववाद) कहते हैं। क्षत्रियराज्य (Feudalism या militarism या Timocracy राज्य का एक प्रकार जिस में पदाधिकारी बनने के लिये आवश्यकें होता है कि वह एक विशेष परिमाणा में संपति रक्खे) से बदला गया। इस के बाद वैश्यराज्य ('Capitalism, Plutocracy धनवत्सत्तात्मक राज्य की बारी आई उसके। बाद अंत में शूद्रराज्य (Democracy, mobocracy अप्रबुद्ध जनगण, अथवा Proletarianism, या labourism, या Siclatorship of the rpoblariat) आया। इतिहास गवाही देता है कि यौरूप में ऐसा ही राज्य है। परन्तु इस का अभि-प्राय यह नहीं कि बाक़ी तीन वर्णों की उस राज्य में कुछ आवाज़ नहीं है। अस्तु, इस देश की प्राचीन पद्धति में, उपर्युक्त चार विभाग ही मनुष्य सम्प्रदाय के किये गये हैं। और यह

कहने की जगह कि ये चारों वर्ण असंधेय (Irreconcilable) हैं।[1] यह कहना चाहिये कि मनोवैज्ञानिक ढंग से इन चारों वर्णों का होना अनिवार्य है और आश्रम तथा वर्ण को मर्यादाओं के अनुसार उनमें मेल रहना अनिवार्य है क्योंकि वे अन्योन्याश्रित हैं। फैसिस्ट राज्य को [2] अथवा वर्गवादी राज्य को [3] जिस का लीनन ने विवरण दिया है, पुलिस राज्य कह सकते हैं परन्तु वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुकूल जो राज्य बने उसे कदापि पुलिस राज्य नहीं कह सकते।

आश्रम और वर्णव्यवस्था का समर्थन

जान रसकिन ने अपने एक प्रसिद्ध ग्रन्थ ("Uutolast") में लिखा है कि पांच बुद्धिविषयक बड़े पेशे हैं जिनका सम्बन्ध मनुष्यों के दैनिक आवश्यकतावों से है और जो प्राय: सभी सभ्य देशों में प्रचलित पाये जाते हैं।

(१) सिपाही (क्षत्री) का पेशा देश की रक्षा करना है।

(२) गुरू (Pastor) का काम शिक्षा देना है।

(३) वैद्य का काम देश को स्वस्थ रखना है।

(४) वकील का काम न्याय की स्थापना करना है।

---

(1) Communism by Laski p. 129

(2) Enc. Brit. article Faseism by L. Villari "All withen the state. nothing outside the state, nothing ofter the state."

(3) Humainty uprooted by M. Hindus p 64 "The whole of Society will become one office and one Society (Lenin)

(५) व्यापारी का काम देश की आवश्यकयाओं को पूरा करना है। रसकिन की सम्मति है कि आवश्यक समय आनें पर इन में से प्रत्येक को अपना कर्त्तव्य पालन करते हुये अपने प्राण तक दे देने चाहिये, क्यों कि जिस आदमी को यह ज्ञान नहीं कि किस प्रकार मरना चाहिये, वह यह भी नहीं जान सकता कि मनुष्य को किस प्रकार जीना चाहिये।[1]

इन में से पहला पेशा क्षत्रिय का है और २ से ४ तक ब्राह्मण के पेशे है, पांचवां वैश्य का है। शूद्र वर्ण का रसकिन ने यहां इसलिये उल्लेख नहीं किया कि उसे बुद्धि विषयक पेशों ही की चर्चा करनी थी। शुद्र का पेशा बुद्धिविषय नहीं, अपितु शरीरविषयक है।

(२) एक और विद्वान् रोवेक ने चार आश्रमों का उल्लेख इस प्रकार किया है:—(१) गृहस्थ (The economic), (२) ब्रह्मचर्य (The theoretical), (३) वान प्रस्थ (The artistic) और (४) संन्यस्थ (The religions)। रोवेक का कथन है कि मनुष्य की सामाजिक प्रकृति होने की दृष्टि से इनमें दो की और वृद्धि होनी चाहिये:—(१) सामाजिक प्रेम का बल (Power of love), (२) राजनैतिक=बल का प्रेम (Power of love)[2] परन्तु ये अन्तिम दोनों तो उपर्युक्त चार आश्रम वालों के कर्तव्य की कोटि में आजाते हैं इनकी पृथक गिन्ती करने की जरुरत नहीं। अस्तु; हमने देख

(1) Loe cit P 37 & 38

(2) The Psychology of charactor by Dr. A.A. Roback.

लिया कि किस प्रकार दुनिया के विचारक आश्रम और वर्ण व्यवस्था के समर्थक हैं।

(३) विलैरी ने भी, फैज़इज्म पर एक लेख लिखते हुये, चार व्यवसायिक श्रेणियों का उल्लेख किया है:—(१) पूंजीवादी (वैश्य), (२) वैज्ञानिक (ब्राह्मण) (३) सांकेतिक (Technical) क्षत्री, (४) लेकर=शूद्र। इन श्रेणियों के भीतर भी वर्ण व्यवस्था के सिद्धांत निहित प्रतीत होते हैं। [1]

(४) सोवियट रूस ने जो शिक्षा के साथ प्रत्येक विद्यार्थी को कला की शिक्षा देना अनिवार्य ठहराया है। एक विद्वान हक्सले की सम्मति है कि असाधारण सूरतों के लिये तो यह बात ठीक हो सकती है परन्तु सदैव के लिये इस प्रथा के जारी रखने का फल उसकी असफलता ही होगी क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति वैश्य की वृत्ति वाला नहीं हो सकता। [2]

(५) सोवियट रूस के लिये प्रसिद्ध था कि वहां खिताब नहीं दिये जाते परन्तु यह बात ठीक प्रमाणित नहीं हुई। योग्यता की दृष्टि से वहां खिताब भी दिये जाते हैं। वहां के खिताब इस प्रकार के होते है:—(१) श्रम शिरोमणि=(Hero ofleboue), (२) लाल कम केतु=(Red labour Flag) इन खिताबों वालों का सोवियट जनता में बड़ामान होता है। [3]

(६) हिन्दूसमाज में जन्म की जातियों के लिये भी ब्राह्मण,

---

(1) Enc Brit. article Faseism by L. Vallari.

(2) A Scientist among the Soviets by Julian Huxly p 100—101 (1932).

(3) Humanity uprooted by M. Hindus p. 84.

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शब्द प्रयुक्त होते हैं इसलिये डाक्टर भगवानदास की सम्मति है कि ब्राह्मण आदि की जगह वर्णों के कुछ और नाम रख लिये जावें जिससे वर्णों का जन्म की प्रचलित जातियों से भेद बना रहे। उन्होंने कुछ एक नाम चारों वर्णों के दिये हैं, उनका हम यहां जनता की ज्ञान वृद्धि के लिये उल्लेख करते हैं।

(१) ब्राह्मण के लिये-(१) शिक्षक,(२) ज्ञानदाता, (३) विद्वान्, (४) ज्ञानी, (५) वर्चस्वी, (६) तपस्वी।

(२) क्षत्रिय के लिये-(१) रक्षक, (२) त्राणदाता, (३) वीर, (४) शुष्मी, [शक्तिमान] (५) तेजस्वी, (६) सहस्वी।

(३) वैश्य के लिए—(१) पोषक, (२) अन्नदाता, (३) दानी, (४) व्यापारी, (५) महस्वी, (६) ओजस्वी।

(४) शूद्र के लिए—(१) सहायक, (२) सहायदाता, (३) सेवी (४) श्रमी, (५) तरस्वी, (६) दमस्वी।[1]

(७) इटैली की आबादी ४० मिलियन अर्थात् ४ करोड़ है परन्तु उनमें फसिस्ट केवल १० लाख हैं इसी प्रकार रूस की आबादी १६० मिलियन अर्थात् १६ करोड़ है परन्तु उसमें वर्ग वादी केवल तीस लाख हैं।[2]

(८) पूँजीपतियों का साम्राज्य प्रायः न बदलने वाले अनियन्त्रित शासकों से भरा हुआ होता है। वे निर्दयता करने में परिपक्व होते हैं और जनता पर आतंक रखते हुए उनकी संपत्ति

(1) Ancient V. Modern Socialism by Dr Bhagawan Das p. 105.

(2) Do p. 142.

का हरण करते रहते हैं।[1] इंगलैंड आदि इसी प्रकार के राज्य हैं, इनका विश्व भावना वाद से कोई लगाव नहीं।

(६) कलहकारी (The Bully) अनियन्त्रित शासक अपनी रक्षा के लिए इन को रक्खा करते हैं। इस देश में सी. आई. डी. इसी प्रकार के व्यक्तियों का सम्प्रदाय है। रूस में इस सी. आई. डी. को पहले चेका (The Cheka) कहा करते थे। परन्तु अब उन्हें जी. पी. यू. (G. P. U.) कहने लगे हैं।[2] ये आमतौर से निर्बलों को सताया करते हैं और बलवानों से डरा करते हैं। इस मामले में रूस और इंगलैंड में कोई अन्तर नहीं है।

वैदिक राज्य और एक विशेषता

वैदिक राज्य की एक विशेषता है कि इस में प्रजा को नागरिकता के साधारण अधिकारों के सिवा जीवन निर्वाह अधिकार (Right of living) प्राप्त होता है। ऋग्वेद में एक जगह अंकित है कि "(राजसंचालक) विद्वान् भूख से (किसी को) नहीं मरने देते, अधिक खाने वाले को (भले ही) मरने के अवसर प्राप्त होते रहते हैं। निश्चित रीति से पोषक का धन नष्ट नहीं होता।"[3] मतलब साफ़ ज़ाहिर है कि भूख से किसी को नहीं मरना चाहिए अधिक खाकर भले ही कोई मर जावे।

---

(1) Ancient V. Modern Socialism by Dr. Bhagawan Dass p. 144.

(2) Do p 144.

(3) न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुः। उताशित मुपगच्छन्ति मृत्यवः। उतोरयिः पृणतो नोपदस्यत्युता पृणन्मर्डितारं न विन्दते॥ (ऋग्वेद 10. 117. 8)

जो लोग भूख को दूर करने में सहायता देते हैं। वे सुखी रहते हैं परन्तु इस कर्तव्य को न पालन करने वाले सुखी नहीं रह सकते। यदि इस देश में वैदिकराज्यपद्धति प्रचलित होती तो बंगाल में लाखों आदमी भूख से न मरने पाते। इस प्रसंग में हम सोवियट रूस की इतनी प्रशंसा कर सकते हैं कि इंगलैंड आदि के विपरीत वहां बेकारों की संख्या का प्रायः अभाव है।

सोलहवां अध्याय

"समाजवाद की एक शाखा"

Guild Socialism

समाजवाद की एक शाखा

गिल्ड समाजवाद, समाजवाद की एक शाखा है जो २०वीं सदी की दूसरी शताब्दी में इंगलैंड में मुख्यता को प्राप्त हुई। उसके बाद जगत् के दूसरे भागों में भी उसका फैलाव हुआ।[1] यह वाद "व्यवसायिक स्वराज्य" है। प्रजातन्त्रीय नियमों का व्यवसायिक और राजनैतिक विषयों में लागू करना इस वाद का उद्देश्य है। जाति के आर्थिक जीवन को व्यवहारिक आधार पर संगठित करना भी इसके उद्देश्य में शामिल है। व्यवहारिक आधार इस वाद का यह होगा कि समस्त जाति का, देश के व्यवसायों पर आधिपत्य हो और हाथ तथा मस्तिष्क से काम करने वाले श्रमजीवियों के हाथ में उसका प्रबन्ध हो और इन

(1) Guild—An association of men belonging to the same date......formed for mutual aid & protection.

Enc. Brit. Article Guild socialism by G. D. H. Cob p. 588

श्रमजीवियों का सम्बन्ध गिल्ड से हो। गिल्ड वालों का विश्वास है कि जब तक विस्तरित और महत्वपूर्ण साधारण नियम, आर्थिक अवस्था से लागू न किए जावेंगे तब तक स्वराज्य भी वास्तविक न होगा। वास्तविक स्वराज्य तो व्यवहारिक ही हो सकता है। मनुष्य के दैनिक कार्य की अवस्था; आवश्यक रीति से उसकी प्रवृत्ति और स्थिति पर, एक नागरिक की हैसियत से अपना प्रभाव डालेगी। आर्थिक व्यवस्था मनुष्यों में जो सबसे अधिक अच्छापन है यदि उसे कार्यार्थ बाहर न निकाल सकी तो समझना चाहिए कि वह अपना काम पूरा नहीं कर सकी। जीवन के प्रत्येक विभाग से यदि धन की लोलुपता के कारण, मनुष्य ने शिक्षा, धर्म, वैधानिक नियम और सात्विक व्यवहार और चिकित्सा को खो दिया तो अनेक प्रकार के रोग आदियों से मनुष्य धन भी नहीं पैदा कर सकेगा। गिल्ड समाजवादियों को चाहिए कि वे समाजवादियों को समझावें कि साक्षात् राज्य के अन्तर्गत जो व्यवसाय है अथवा जो व्यवसाय अनियन्त्रित शासन मर्यादा से किए जाते हैं। उनको न सहयोग देवें न उन का विश्वास करें।[1]

एक दूसरा दृष्टिकोण

टेलर का कहना है कि एक उन्मादपूर्ण किंवदन्ती, अनेक श्रेष्ठ पुरुषों और राजनैतिक क्षत्रों में फैली हुई है कि उन्नति (Progress) शब्द का भाव किसी नई वस्तु का खोज कर लेना है। परन्तु सचाई यह है कि अनेक सूरतों में, उन्नति

---

(1) Guild through world chaos by G.D.H. Cob p. 585-95

का अभिप्राय किन्हीं पुरानी बातों पर लौटना ही होता है।[1] सर्वांश में तो नहीं परन्तु अनेक अंशों में यह बात ठीक ही प्रतीत होती है।

अनियन्त्रित शासन को दृढ़ करने के लिए अनियन्त्रित शासक

क़ानूनों की अधिकता

क़ानूनों ही का आश्रय लिया करते हैं। यहां हम एक दो उदाहरण देते हैं:—(१) इंगलैंड की पार्लियामेंट ने ११६६ से १६३० तक १२ वर्ष के भीतर ७५० क़ानून बनाए थे जिनके छपे हुए पृष्ठों की संख्या ८००० पृष्ठ थीं।

(२) इसी १२ वर्ष के भीतर संयुक्त राज्य अमरीका के अनेक राज्यों ने ६० हज़ार क़ानून बनाये थे। इतने क़ानून बनाने वालों ने एक नियम यह बना रक्खा है कि क़ानून की अनभिज्ञता कोई उज्र नहीं है।" इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक घटना है—एक हाईकोर्ट की 'रिपोर्ट' में एक जज का लेख अङ्कित है कि "इस वैधानिक नियम की ओर एडवोकेट जनरल ने मेरा ध्यान नहीं दिलाया।" प्रश्न यह है कि क्या इस जज के लिए (Ignorance of the law is no Excuse) यह नियम लागू नहीं था।[2]

टेलर ने एक जगह लिखा है कि मनुष्यों की समाप्त न होने

वर्तमान कथित प्रजातन्त्रीयराज्य का अभिमान

वाली स्मृति ही का नाम परंपरा है। उसका विचार था कि कई सूरतों में पीछे लौटने ही का नाम उन्नति है जैसा ऊपर कहा गया है। जो लोग आज के राज्य के प्रकारों को अच्छा

(1) The Guild state by G. R. S. Taylor. p.1

(2) The guild state by G. R. S. Taylor p 15

बतलाकर बीते काल की निन्दा किया करते हैं उनके लिये टेलर ने एक बड़ी कठोर बात लिखी है। वह कहता है आज कल का इश्तहारबाज़ी के द्वारा ढोल पीटने का तरीक़ा, एक सीमा तक सफल हो रहा है। इसी इश्तहारबाज़ी द्वारा कहा जाता है कि वर्तमान शासन अधिक प्रजातन्त्रीय नियमों पर चल रहा है उसकी अपेक्षा जो मध्यकालीन युग में था। टेलर की दृष्टि में यह आश्चर्यजनक दावा इतिहास की बड़ी से बड़ी शेख़ी है।[1]

(२) अपने ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में जिसका शीर्षक "गिल्ड सिस्टम का ऐतिहासिक आधार" है, समाप्त करते हुये टेलर ने लिखा है :—"उन कारणों ने, जो अत्यन्त केन्द्रीकरण तथा राजा और सिनेट के मध्य आन्तरिक शक्ति प्राप्ति के लिये, कलह उत्पन्न कर रहे थे, रोम के साम्राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर दिया"। "रोम इसी लिये बरबाद हुआ कि उसका राज्य, संसार में सब से अधिक कठोर था"। उसके बरबादी के कारण वे जंगली और असभ्य जातियाँ हुई जो यह भी नहीं जानती थीं कि राज्य क्या हुआ करता है। परन्तु सचाई यह है कि टयूटन (Teutons) जातियों द्वारा, रोम बरबाद नहीं हुआ। उसके बरबादी के असली कारण उसके शासक और अनियन्त्रित शासक हुये थे। इन्हीं कारणों से बृटिश साम्राज्य भी बरबाद होगा।[2]

गिल्डप्रथा के तीन बुनियादी नियम

मुख्य ३ नियम हैं, जिनके आधार पर "गिल्ड सिस्टम" स्थापित हुआ था :—(१) सर्वसाधारण के सामाजिक जीवनसंगठन का मुख्य आधार व्यवहार व्यवसाय तथा व्यापार की श्रेणी-

---

(1) The Guild state by G.K.S. Taylor p 26-29.
(2) Do p. 34 & 35.

बढ़ता, होना चाहिये, (२) गिल्ड का स्वप्रबंधित (Self Managed) होना आवश्यक है। (३) गिल्ड को वर्तमान समाज की उस प्रवृत्ति से, जो अत्यन्त केन्द्रीकरण से सम्बन्धित है, बचना चाहिये।[1]

गिल्ड के संगठन का पहला मुख्य नियम

गिल्ड के अन्तर्गत जितने संगठन हों, उनकी सामाजिक बनावट व्यवसाय विभाजन के आधार से होनी चाहिये। नागरिक अपने अपने व्यापार या पेशों की बुनियाद के साथ संगठित होने चाहिये, भूमि या क्षेत्र विशेष के आधार से नहीं। इस प्रकार का संगठन निम्न रूपों में अब भी मौजूद है जैसे :— (१) चाय की खेती के हिस्सेदार, (२) रूई के व्यवसाय से संबंधित व्यापार संघ, (३) अध्यापक समुदाय, (४) डाक्टरों की समिति तथा (५) क़ानूनी पेशा करने वालों का संघ इत्यादि। स्पष्ट है कि उपर्युक्त विभाग पेशे के आधार ही पर किये गये हैं। आज की निर्वाचन पद्धति का आधार क्षेत्र अर्थात् नगर वा ग्रामों का एक भाग होता है, जहां के मतदाता किसी को निर्वाचित किया करते हैं। परन्तु गिल्ड प्रथा में व्यवसायों की भिन्नता उसके किसी ग्रुप के निर्माण के साधक हुआ करते हैं।

गिल्ड सिस्टम और वर्णव्यवस्था

वर्ण भी पेशों के आधार से बनते हैं और गिल्ड की बनावट के आधार भी पेशे होते हैं। इसलिये मौलिक आधार गिल्ड और वर्ण का एक ही है। और यह समता प्रकट करती है कि गिल्ड प्रथा के संचालक, वर्तमान, क्षेत्र के आधार के साथ निर्वाचन पद्धति की

(1) The Guild State by G. R. S. Taylor p. 91.

अपेक्षा, वर्णों के आधार व्यवसाय या पेशों को, अपने गिल्डों या संघों के बनाने के लिये अधिक उपयोगी समझते हैं।

इंगलैंड में दो पार्लियामेण्ट हैं। एक को 'हाउस आफ लार्ड्स' कहते हैं। इसके सदस्य अधिकतर पादरी या अमीर और धनी हुआ करते हैं। यह संगठन अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है और इसमें अधिकतर अयोग्य पुरुष ही आया करते हैं जिन्हें किसी अवस्था में भी शिक्षित और कार्यकुशल पुरुष या उनका प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता। (२) दूसरे को कामन्स=सर्वसाधारण का हाउस या संघ कहते हैं। इसमें अधितर कारोबारी आदमी या मज़दूर श्रेणी के व्यक्ति आया करते हैं। इसे भी त्रुटिरहित वा योग्य पुरुषों का संगठन नहीं कह सकते हैं।[1] इसकी अपेक्षा वर्ण-आश्रम-राज्य सभी श्रेणियों का सम्मिलित और प्रतिनिधि राज्य हुआ करता है। उस राज्यप्रणाली की अपेक्षा इंगलैंड की राज्यप्रणाली किसी गिनती में आने योग्य नहीं है।

इंगलैंड के राज-संगठन के दोष

दूसरा नियम यह है कि गिल्ड को अपना प्रबन्ध स्वयं करना चाहिए इस स्वप्रबंध प्रथा से सूखी हड्डियों में जान आजाया करती हैं, इससे अच्छा और कोई ढंग आत्मशासन का नहीं है। इस संगठन में व्यापार कुशल, धनी, कुलीन और चिकित्सक आदि सभी आ जाते हैं।[2]

गिल्ड का दूसरा नियम

(1) The guild state by G. R. S. Taylor p. 175 & 176

(2) Do. p. 56 & 64.